भारतीय कृषि : अर्द्ध-सामंती या पूंजीवादी ?

(दूसरी किस्त)

'लाल सलाम' के पिछले अंक में हमने भारतीय कृषि के चरित्र के प्रश्न पर बहस के कुछ बिन्दुओं पर चर्चा की थी । उसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए इस अंक में हम कृषि में पूंजीवादी विकास के संदर्भ में बाजार अर्थ-व्यवस्था के विकास के प्रश्न व कृषि में पूंजी संचय (और विस्तारित पैमाने के उत्पादन) के प्रश्न को लेंगे और इनके बारे में प्रणाली संबंधी कुछ बुनियादी मार्क्सवादी-लेनिनवादी सैद्धान्तिक बातों को रखने के साथ-साथ भारतीय कृषि व्यवस्था की वर्तमान अवस्था के बारे में कुछ तथ्यात्मक बातें रखेंगे ।

आगे बढ़ने के पहले हम एक महत्वपूर्ण बात पर विचार करना जरूरी समझते हैं । "रूस में पूंजीवाद का विकास" नामक पुस्तक के प्राक्कथन में ही लेनिन अपने विश्लेषण की कुछ सीमाओं को चिन्हित करते हैं । वे कहते हैं :

> " हमें लगता था कि रूस में पूंजीवाद के विकास की समग्र प्रक्रिया की जांच करना आवश्यक है ताकि इसे इसकी समग्रता में चित्रित करने का प्रयास किया जा सके । कहने की जरूरत नहीं है कि यदि कुछ आवश्यक सीमाओं को इसमें जोड़ा न जाय तो इस प्रकार का विस्तृत कार्यभार एक व्यक्ति की क्षमताओं के बाहर होगा । पहला, जैसा कि शीर्षक स्वयं दिखाता है, हम रूस में पूंजीवाद के विकास की समस्या को केवल गृह-बाजार के दृष्टिकोण से निरूपित कर रहे है, विदेशी बाजार की समस्या व विदेश व्यापार पर आंकड़ों को किनारे रखते हुए । दूसरे, हम स्वयं को शुद्धतः सुधारोत्तर (Post-Reform) रूस तक सीमित रखेंगे । तीसरे, हम मुख्यतः और सिर्फ आंतरिक, शुद्धत : रूसी गुबेर्नियाओं (Gubernias) से संबंधित आंकड़ों तक सीमित रखेंगे। चौथा, हम स्वयं को सिर्फ इस प्रक्रिया के आर्थिक पहलू तक ही सीमित रहेंगे ।"
>
> (लेनिन, Development of Capitalism in Russia, Collected works, vol.-3 पृष्ठ -25, अनुवाद हमारा है)

लेनिन की उपरोक्त बात को उद्धृत करना हम आवश्यक समझते हैं क्योंकि भारतीय कृषि में पूंजीवादी विकास पर चर्चा करते समय यह प्रवृति अक्सर नजर आती है कि साथीगण बातों को विदेश व्यापार के कई सारे पहलुओं से, 1947 के सत्ताहस्तांरण (जिसके बाद कृषि क्षेत्र में सुधारों की बदौलत व्यापक परिवर्तन आये हैं) के पहले की तमाम बातों से, भारत के संदर्भ में केन्द्रीय महत्व के इलाकों के बजाय परिधिगत इलाकों की बातों से (मसलन, आदिवासी बहुल इलाकों से) व इस प्रक्रिया के आर्थिक पहलू के बजाय राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं से उलझा देते हैं और बहस किसी मुकाम पर नहीं पहुंचती है । ऐसा नहीं है कि हम उपरोक्त पहलुओं को गैर जरूरी समझते हैं । हमारा मानना है कि यदि कृषि में पूंजीवाद के विकास के संदर्भ में पहले केवल आर्थिक पहलू के मद्देनजर भारत के केन्द्रीय महत्व के इलाकों के संदर्भ में, विदेश व्यापार को किनारे रखते हुए, 1947 के बाद के दौर में केवल गृह-बाजार के विकास की प्रक्रिया को एक बार गहराई से समझ लिया जाय (और ऐसा करना न बखूबी संभव है बल्कि सैद्धान्तिक तौर पर एक सही प्रक्रिया भी यही है) तो फिर विदेश व्यापार, परिधिगत महत्व के इलाकों, राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं को व 1947 के पहले के ऐतिहासिक विकास क्रम को न केवल बेहतर तरीके से

समझा जा सकता है बल्कि इन सभी पहलुओं को भी शामिल करते हुए सामान्यतः भारतीय समाज में और विशेषकर भारतीय कृषि क्षेत्र में, पूंजीवादी विकास की परिघटना को उसकी समग्रता में विस्तार से चित्रित किया जा सकता है । और इस लेख में इसी पद्धति का पालन करते हुए हम स्वयं को पूंजीवादी विकास के आर्थिक पहलू तक सीमित रखते हुए केवल उत्तर-औपनिवेशिक भारत के महत्वपूर्ण राज्यों में गृह-बाजार के विकास की प्रक्रिया की जांच कर रहे हैं । शेष मामलों पर चर्चा अन्यत्र ।

I

कृषि उत्पादों का बढ़ता बाजारीकरण

पूंजीवाद के विकास संदर्भ में बाजार के विकास का प्रश्न बहुत महत्व का होता है। इसीलिये आकरण ही नहीं था कि "रूस में पूंजीवाद का विकास" नामक अपना प्रसिद्ध ग्रंथ लिखते समय लेनिन ने "स्वयं के समक्ष यह जांच-पड़ताल का लक्ष्य रखा कि रूसी पूंजीवाद के लिए गृह-बाजार का निर्माण कैसे हो रहा है ।" लेनिन ने एकाधिक बार इस बात का जिक्र किया है कि पूंजीवाद के विकास के पहले चरण में माल उत्पादन अस्तित्व में आता है, जिसका अर्थ होता है उत्पादों का बेचने के उद्देश्य से उत्पादन (यानी माल (commodity) के रूप में उत्पादन) । माल उत्पादन (commodity production) के तहत श्रम शक्ति का उत्पाद माल बन जाता है । अगले चरण में, जब न केवल मानव श्रम का उत्पाद ही माल जाता है बल्कि इससे आगे बढ़ कर स्वयं मानव श्रम शक्ति (labour power) ही माल बन जाती है तब माल अर्थव्यवस्था (commodity economy) विकसित होकर पूंजीवादी अर्थव्यावस्था (capitalist economy) में परिवर्तित हो जाती है ।

फरवरी, 1903 में पेरिस के 'सामाजिक विज्ञान का रूसी उच्च विद्यालय' में कृषि प्रश्न पर व्याख्यान देते हुए लेनिन इस मामले को यूं पेश करते है:

> "हम उस प्रक्रिया के चारित्रिक मूल लक्षणों और विशिष्ट रूपों की जांच पड़ताल करें जो कृषि में पूंजीवादी व्यवस्था को पैदा करती है । इस प्रक्रिया के अवतरित होने का कारण दोहरा है : (1) माल उत्पादन और (2) यह तथ्य कि, न केवल उत्पाद, बल्कि श्रम-शक्ति एक माल है। जब श्रम-शक्ति को विनिमय में खींच लिया जाता है, समग्र उत्पादन पूंजीवादी बन जाता है, और एक नया वर्ग सर्वहारा अस्तित्व में ला दिया जाता है"
>
> (लेनिन, Marxist Views on the Agrarian Question, Collected Works, Vol.-6, पृष्ठ -340, अनुवाद हमारा है)

इसी प्रकार बुर्जुआ बुद्धिजीवियों (बुलगाकोव वगैरह) द्वारा बाजार के प्रश्न पर मार्क्सवाद की भोंडी आलोचना के जवाब में मार्क्सवादी अवधारणा के स्थापित करते हुए लेनिन लिखते हैं :

> **"माल - उत्पादन का** तात्पर्य सामाजिक अर्थव्यवस्था के एक संगठन से है जिसमें एक ही निश्चित उत्पाद के निर्माण में विशेषज्ञता रखने वाले अलग-अलग विलगित (isolated) उत्पादकों द्वारा सामानों का उत्पादन किया जाता है, ताकि समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए बाजार में उत्पादों को खरीदना और बेचना (जो, इस प्रकार, माल बन जाते हैं) आवश्यक हो जाए। **पूंजीवाद** से तात्पर्य माल उत्पादन के विकास की उस अवस्था से है जहां, न केवल मानव श्रम का उत्पाद, बल्कि स्वयं मानव श्रम-शक्ति एक माल बन जाती है ।"
>
> (लेनिन, On-So-called Market Question, Collected Works, Vol.1, पृष्ट 93, अनुवाद व शब्दों पर जोर हमारा है)

उपरोक्त उद्धरणों से बात बिलकुल स्पष्ट है (हम इसे साबित करने के लिए मार्क्सवाद के पुरोधाओं मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्टालिन-माओ के उद्धरणों की एक लम्बी श्रृंखला पेश कर सकते हैं) कि पूंजीवाद के विकास की प्रक्रिया में पहले चरण में माल उत्पादन (बाजार में बेचने के उद्देश्य से सामान का उत्पादन) अस्तित्व में आता है और माल अर्थव्यवस्था के विकास के अगले चरण के रूप में पूंजीवाद अस्तित्व में आता है जब न केवल मानव श्रम का उत्पाद बल्कि उससे आगे बढ़कर मानव श्रम-शक्ति स्वयं ही माल बन जाती है ।

इसलिए हमें भारत में पूंजीवाद के विकास की प्रक्रिया व उसके स्तर को समझना है तो पहले हमें माल-उत्पादन (बाजार के लिए सामान का उत्पादन) की स्थिति व स्तर को समझना होगा और अपने विश्लेषण के अगले चरण में मानव की श्रम-शक्ति के माल बनने की प्रक्रिया की स्थिति व स्तर की जांच-पड़ताल करनी चाहिये । हम बिलकुल इसी क्रम में अपनी बात रखेंगे भी। दरअसल यह मार्क्सवादी समझ की बुनियादी बात है और संभवतः भारतीय कृषि के चरित्र को **अर्द्ध सामंती** चित्रित करने वाले हमारे क्रांतिकारी साथी भी इसे बखूबी समझते हैं । तभी तो वे यह साबित करने के लिये, कि भारतीय कृषि पूंजीवादी नहीं है, इस बात को स्थापित करने की पुरजोर कोशिश करते है कि यहां "उपभोग के लिए उत्पादन" का ही प्रभुत्व है और साथ ही यह भी कि कृषि क्षेत्र में श्रम-शक्ति के माल बनने की प्रकिया बहुत निम्न स्तर पर हैं।हमारी समझ में ये तर्क सामान्यतः भारतीय समाज, और विशेषकर भारतीय कृषि, के यथार्थ से मेल नहीं खाते। लेकिन इस विषय में कोई फतवा जारी करने जल्दबाजी में रहने की प्रवृति को गलत मानते हुए हमारा प्रयास यह होगा कि कृषि में पूंजीदादी विकास के संदर्भ में मार्क्सवाद की आम सैद्धान्तिक बातों को रखने के साथ-साथ हम जमीनी यथार्थ को समझने के लिए उपलब्ध आकड़ों पर नजर डालें । हमारे लिये भारतीय कृषि व्यवस्था के 'अर्द्ध सामंती' या 'पूंजीवादी' होने का सवाल, भारतीय क्रांति की मंजिल के प्रश्न पर भारतीय कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच मौजूद एक ऐसा गंभीर मतभेद है जिसे हम परस्पर फतवेबाजी के गंदे, दलदली कीचड़ में उलझा कर रख देने के बजाय गंभीर सैद्धान्तिक बहस के जरिए हल करना अति आवश्यक मानते है । यह व्यक्तिगत या गुटीय पूर्वाग्रह का नहीं, मार्क्सवादी-लेनिनवादी विज्ञान का प्रश्न है । और वैज्ञानिक, बहसों से किनाराकशी करने में नहीं, बहसों मे शामिल होकर अपनी बात साबित करने में विश्वास करते हैं । प्रस्तुत लेख इसी भावना व उद्देश्य से लिखा गया है ।

हमारे समक्ष यह स्पष्ट है कि कृषि में पूंजीवाद के विकास का महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि "उपभोग के लिये उत्पादन" की जगह "माल उत्पादन" यानी "बाजार के लिए उत्पादन" लेता जाय और "उपभोग के लिये उत्पादन" की प्रवृति क्रमशः कमजोर पडती जाय।

हम पहले ही जिक्र कर चुके है कि हमारे क्रांतिकारी आंदोलन के साथी, भारतीय कृषि को "अर्द्ध-सामंती" मानने वाले साथी इस बात पर जोर देते हैं कि आज भी भारतीय कृषि क्षेत्र में उत्पादन मूलतः उपभोग के लिये हो रहा है । इसलिये हम इसी बिन्दु से शुरूआत करेंगे और यह दिखाने का प्रयास करेंगे कि कृषि क्षेत्र में भी "बाजार के लिये उत्पादन" की प्रवृति हावी है।

भारत सरकार के "आर्थिक सर्वेक्षण 1998-99" अनुसार *सकल बोया गया क्षेत्रफल* (gross cropped area) करीब 18 करोड़ हेक्टेयर है जिसमें से 12.4 करोड़ हेक्टेयर (यानि 68.9 %) पर खाद्यान्न (food grains) की खेती होती है तो 5.6 करोड़ हेक्टेयर (यानि 31.1 %) पर गैर - खाद्यान्न (non-food grains) की खेती की जाती है। गैर-खाद्यान्न फसलों के बारे में तो यह सर्वविदित हैं कि इनकी खेती मूलतः बेच कर नकद हासिल करने के उद्देश्य से की जाती है, इसीलिये इन्हें नकदी फसलों (cash crops) अथवा

वाणिज्यिक फसलों (commercial crops) की संज्ञा दी जाती है । जाहिर है कि हमारे देश में कुल बोये गए क्षेत्रफल में से करीब एक तिहाई क्षेत्रफल पर (जिस पर नकदी फसलें बोई जाती हैं) मुख्यतः बाजार के लिये खेती की जा रही है । इस पर कोई विवाद नहीं होना चाहिये।

यहीं पर यदि हम वर्ष 1981-82 को आधार मानकर सकल बोये गए क्षेत्रफल पर नजर डालें तो हम पाएंगे कि 1981-82 से 1997-98 के दौरान सकल बोये गए क्षेत्रफल में 5.9% की वृद्धि हुई है और यह समग्र बढ़ा हुआ क्षेत्रफल नकदी फसलों के खेती के लिये उपयोग में लाया गया है । 1981-82 से 1997-98 के बीच खाद्यानों के मातहत कुल क्षेत्रफल में जहां 2.3% की कमी आई है वहीं गैर-खाद्यान्न फसलों के मातहत क्षेत्रफल में 33.0% की वृद्धि दर्ज की गई है । सकल बोये गए क्षेत्रफल में यह वृद्धि तिलहनी फसलों के लिये 37.5%, कपास के लिये 11.2%, जूट के लिए 6.1%, चाय के लिये 11.1%, काफी के लिये 40.2%, रबर के लिये 75.0%, गन्ने के लिये 38.6%, आलु के लिये 79.7% दर्ज की गई है । यह सब कुछ 1981-82 से 1997-98 के बीच नकदी फसलों की खेती की और बढ़ते रूझान की और संकेत कर रहा है। लेकिन मात्र इतने से काम नहीं चलेगा। असली विवाद की जड़ तो खाद्यान्नों और उनमें भी अनाज (cereals) के उत्पादन का मामला है और वहीं पर स्थिति स्पष्ट होनी जरूरी भी है । आइये! भारत में अनाज (cereals) की खेती और उपयोग के मामले पर बहस को केन्दीत करें ।

अनाज (cereal) के मामले में भी हम "उपभोग के लिये खेती" किये जाने को मूल प्रवृत्ति मानने के तर्क को यथार्थ से परे मानते हैं और यहां यह दिखाने का प्रयास करेंगे कि अनाज के उत्पादन व उपभोग दोनों के मामलों में बाजार की शक्तियां हावी हो चुकी हैं और यही प्रवृत्ति भारतीय खेती में अनाज उत्पादन में मामले में मूल प्रवृत्ति है, विकासमान प्रवृत्ति है और धीरे-धीरे अनाज उत्पादन के क्षेत्र में "उपभोग के लिये उत्पादन" की प्रवृत्ति सिकुड़ती जा रही हैं और उत्तरोत्तर "बाजार के लिये उत्पादन" की प्रवृत्ति उसे विस्थापित करती जा रही है।

अपनी बात को स्थापित करने के लिये हम राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की रिपोर्ट का सहारा लेंगे । सबसे पहले हम यह जायजा ले कि हमारे देश के प्रमुख राज्यों में ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्य भोजन के रूप में किन अनाजों का उपभोग किया जाता हैं ।सारिणी 1.1 हमें यह समझने में मदद करती है ।इससे ज्ञात होता है कि चावल आन्ध्रप्रदेश, बिहार, असम, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तरप्रदेश व बंगाल जैसे 12 बड़े राज्यों के गांवों में महत्वपूर्ण फसल है । इनमें भी आन्ध्रप्रदेश, असम, केरल, उड़ीसा, तमिलनाडु व पश्चिम बंगाल में कुल अनाज उपयोग में चावल का हिस्सा 90% के लगभग हैं। बिहार, गुजरात, हरियाणा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, राजस्थान, उत्तरप्रदेश जैसे 8 बड़े राज्यों के गांवों में गेहूं महत्वपूर्ण फसल है । इनमें भी हरियाणा व पंजाब में मुख्यतः गेहूं का ही उपयोग होता हैं जहां कुल अनाज उपभोग में गेहूं का हिस्सा 90% से अधिक है। कर्नाटक और महाराष्ट्र के ग्रामीण इलाकों में बाजरा, राजस्थान के ग्रामीण इलाकों में मक्का व कर्नाटक के ग्रामीण इलाकों में रागी (ragi) भी महत्वपूर्ण फसल है। लेकिन चूकिं चावल व गेहूं ही अखिल भारतीय स्तर पर महत्वपूर्ण फसलें हैं और बाजरा, ज्वार, मक्का, रागी वगैरह की खपत चावल व गेहूं की तुलना में बहुत कम है, इसलिये चावल व गेहूं की फसलों को लेकर ही विश्लेषण करना हम बेहतर समझते हैं। यहां हमारा उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है और वह है: "उपभोग के लिये अनाज उत्पादन भारतीय कृषि की मूल प्रवृत्ति है" जैसी बहुप्रचारित धारणा के बारे में जांचपड़ताल करना। यदि हम चावल व गेहूं जैसे अनाज को लेकर जांचपड़ताल कर लें तो अनाज उत्पादन की मुख्य प्रवृत्ति हमारे सामने स्पष्ट हो जाएगी

और विश्लेषण की क्लिष्टता से भी बचा जा सकेगा। केवल इसी वजह से, किसी अन्य कारण से कदापि नहीं, हम ज्वार, बाजरा, मक्का जैसी फसलों के बारे में विस्तारित विश्लेषण फिलहाल नहीं कर रहे हैं।

आइये अब आगे चलें। अपनी बातों को समझाने के लिये हमने चावल के सन्दर्भ में सारिणी 1.2 व गेहूं के लिये सारिणी 1.3 तैयार की हैं।इनमें कालम संख्या (2) से (6), (7) व (8) के आकड़े *राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण* से लिये गए हैं और इन्हीं के आधार पर हमने स्वयं शेष कालमों में दिये गए आकड़ों की गणना की है।

सर्वप्रथम सारिणी 1.2 की मदद ली जाय और चावल के उपभोग पर नजर डाली

सारणी 1.1 : विभिन्न अनाजों (और उनके उत्पादों) का प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग (किलोग्राम में) (ग्रामीण)

राज्य	चावल	गेहूं	ज्वार	बाजरा	मक्का	जौ	रागी	सभी
आन्ध्र प्रदेश	11.57 (87.2%)	0.19	0.98	0.09	0.07	0.00	0.34	13.27
बिहार	7.95 (55.6%)	5.58 (39.0%)	0.01	0	0.69	0.00	0.06	14.31
गुजरात	2.01 (18.9%)	3.98 (37.3%)	0.84	2.90 (27.2%)	0.83	0	0.08	10.66
हरियाणा	0.73	11.88 (92.0%)	0	0.29	0.01	0	0	12.92
कर्नाटक	5.44 (41.4%)	0.85	4.01 (30.5%)	0.11	0.20	0	2.53 (19.2%)	13.25
केरल	9.29 (91.9%)	0.82	0	0	0	0	0	10.11
मध्यप्रदेश	6.03 (42.5%)	5.81 (40.9 %)	1.35	0.14	0.78	0	0.01	14.20
महाराष्ट्र	2.97 (26.1%)	2.21 (19.4%)	4.76 (41.8%)	1.18	0.04	0	0.21	11.39
उड़ीसा	15.24 (96.3%)	0.38	0	0.01	0.03	0	0.25	15.93
पंजाब	0.74	9.87	0	0	0.18	0	0	10.78
राजस्थान	0.22	9.44 (63.6%)	0.18	3.16 (21.3%)	1.70	0.14	0	14.85
तमिलनाडु	10.32 (88.0%)	0.34	0.15	0.25	0.01	0	0.03	11.72
उत्तर प्रदेश	4.00 (28.8%)	9.16 (65.9%)	0.11	0.29	0.29	0.02	0.03	13.91
पश्चिम बंगाल	13.73 (91.8%)	1.18	0	0	0.05	0	0	14.96
अखिल भारत	7.02 (52.3%)	4.40 (32.8%)	0.84	0.48	0.38	0.01	0.24	13.40

स्रोत : NSS. 50 वां दौर, जुलाई 1993-जून 1994, रिपोर्ट संख्या 424

जाए। इससे हमें यह पता चलता हैं कि ग्रामीण भारत के (अभी हम शहरी भारत को छोड़कर बात कर रहे हैं जहां स्वाभाविक तौर पर सभी कृषि उत्पाद मुख्यतः बाजार से खरीद कर ही उपभोग में लाए जाते हैं) सभी परिवारों द्वारा चावल के कुल उपभोग का 62.0% बाहरी उत्पाद से आता हैं, घरेलू उत्पाद से नहीं। यानी ग्रामीण भारत में चावल के कुल उपभोग का बड़ा हिस्सा "घरेलू उत्पाद से उपभोग" का न होकर बाहरी उत्पादन से उपभोग का है। अब यदि हम अलग-अलग राज्यों के आकड़ों पर नजर डालें, तो पाएंगे कि केवल असम, मध्य-प्रदेश व उत्तर-प्रदेश ही ऐसे राज्य हैं जिनके ग्रामीण इलाकों में चावल के कुल उपभोग का 50% से कम हिस्सा बाहरी उत्पाद से आता है (हालांकि यहां भी यह 40% से ऊपर हैं)। चावल का उपभोग करने वाले शेष राज्यों के ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों द्वारा उपभोग में लाए जाने वाले चावल का बड़ा हिस्सा बाहरी उत्पाद से आता है । आंध्र-प्रदेश व केरल जैसे राज्यों के ग्रामीण इलाकों में (जहां कुल अनाज उपभोग में चावल का हिस्सा करीब 90% हैं) तो कुल चावल उपभोग में क्रमशः 80.7% व 91.9% हिस्सा घरेलू उत्पाद से न आकर बाहरी उत्पाद से आता हैं । यह और कुछ नहीं, चावल के उपभोग के मामले भारत के ग्रामीण इलाकों में ही बाजार की शक्तियां किस हद तक विकसित हो गई हैं, इसी बात की अभिव्यक्ति है ।

जो बात चावल के उपभोग के बारे में है, वही गेहूं बारे में भी लागू होती है (देखें सारणी 1.3) । अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाले गेहूं के कुल उपभोग में 55.26% हिस्सा बाहरी उत्पाद से आता है । गेहूं का उपभोग करने वाले मुख्य राज्यों में उत्तर-प्रदेश को छोड़कर शेष सभी राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में कुल गेहूं उपभोग में बाहरी उत्पाद से आने वाला हिस्सा 50% से कहीं अधिक है । बिहार के लिये यह 62.12%, गुजरात के लिये 88.05%, हरियाणा के लिये 57.83%, मध्य-प्रदेश के लिये 54.82%, पंजाब के लिये 66.45%, व राजस्थान के लिये 54.60% है ।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि भारत के ग्रामीण इलाकों में अनाज की कुल खपत का एक बड़ा हिस्सा "घरेलू-उत्पाद" से न आकर बाहरी उत्पाद से आ रहा है। अब यदि हम इसी विश्लेषण को आगे बढ़ाते हुए शहरी आबादी को भी समेट लें तो चित्र और स्पष्ट हो जायगा। 1991 की जनगणना के मुताबिक भारत की 75% आबादी गांवो में व 25% शहरों में रहती है। यदि हम यही अनुपात सन् 2001 में भी मान लें, और शहर में भी अनाज की प्रति व्यक्ति खपत मोटे तौर पर ग्रामीण इलाके के बराबर मान लें तो अनाज की कुल खपत 33% बढ जायगी और यह बढ़ी खपत लगभग पूरी ही बाहरी उत्पाद से हासिल की जाती है। दुरूहता से बचने के लिये हम यहां विस्तार से गणना न करके केवल इतना कह देना चाहेंगे, यदि गावों व शहरों, दोनों को, शामिल करते हुए बात करें तो चावल की कुल खपत का 70% व गेहूं की कुल खपत का 65% से अधिक बाहरी उत्पाद से आता है।

तो यह थी अनाज के मामले में बाजार की स्थिति। गैर खाद्यान्न के बारे में हम पहले कह चुके हैं कि इनकी खेती होती ही मुख्यतः बाजार के लिये है। ये हैं ही नकदी फसलें(cash crop) ।

अभी तक हम उपभोग से संबंधित आकड़ों के माध्यम से कृषि उत्पादों के बाजारीकरण (commercialisation) बारे में अनुमान लगा रहे थे। अब जरा कुछ अन्य तथ्यों पर नजर डालें जो कृषि उत्पादों के बाजारीकारण की स्थिति के बारे में ही एक आंकलन पेश करते हैं। भारत में 1998 में कुल 169 करोड़ टन खाद्यान्न का शुद्ध उत्पादन हुआ, इसमे से 25.5 करोड़ टन यानि 15.1% तो केवल सरकारी (जैसे FCI वगैरह) द्वारा

सारणी 1.2 : विगत 365 दिनों में गेहूं उत्पादक परिवारों व अन्य परिवारों में गेहूं के उपभोग, घरेलू व बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग का विवरण (ग्रामीण)

राज्य	गेहूं बोने वाले परिवार										अन्य परिवार							सभी परिवार			
	कुल परिवारों में गेहूं उत्पादक परिवारों का %	कुल व्यक्तियों में गेहूं उत्पादक परिवारों के व्यक्तियों का %	गेहूं उत्पादक परिवारों के व्यक्तियों की संख्या (00)	कुल गेहूं उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	घरेलू उत्पाद से गेहूं उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	कुल गेहूं उपभोग में घरेलू उत्पाद से गेहूं उपभोग का %	बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	कुल गेहूं उपभोग में बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग का %	गेहूं उत्पादक परिवारों का कुल गेहूं उपभोग प्रति वर्ष (लाख टन)	गेहूं उत्पादक परिवारों का बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग प्रति वर्ष (लाख टन)	कुल उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	घरेलू उत्पाद से गेहूं उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	कुल उपभोग में घरेलू उत्पाद से गेहूं उपभोग का %	बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	कुल गेहूं उपभोग में बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग का %	अन्य परिवारों का कुल गेहूं उपभोग प्रतिवर्ष (लाख टन)	अन्य परिवारों का बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग प्रतिवर्ष (लाख टन)	कुल गेहूं उपभोग प्रतिवर्ष (लाख टन)	घरेलू उत्पाद से गेहूं उपभोग (लाख टन)	बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग (लाख टन)	बाहरी उत्पाद से गेहूं उपभोग का कुल गेहूं उपभोग में %
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)	(13)	(14)	(15)	(16)	(17)	(18)	(19)	(20)	(21)	(22)
बिहार	42.8	47.1	289889	6.79	4.41	64.95	2.38	35.05	23.62	8.28	4.53	0.08	1.77	4.45	98.23	17.70	17.39	41.32	15.65	25.67	62.12
गुजरात	21.2	23.6	61038	5.5	1.91	35.73	3.59	65.27	4.03	2.63	3.56	0.04	1.12	3.52	98.88	8.44	8.35	12.47	1.49	10.98	88.05
हरियाणा	45.2	51.3	65128	12.87	9.51	73.89	3.36	26.11	10.06	2.63	10.89	0.29	2.66	10.60	97.34	8.08	7.86	18.14	7.65	10.49	57.83
मध्यप्रदेश	37.9	42.8	208344	9.36	6.01	64.21	3.35	35.79	23.40	8.38	3.19	0.11	3.45	3.08	96.55	10.66	10.29	34.06	15.39	18.67	54.82
पंजाब	36.9	40.8	53832	10.59	7.68	72.52	2.91	27.48	6.78	1.88	9.34	0.34	3.64	9.00	96.36	8.75	8.44	15.53	5.21	10.32	66.45
राजस्थान	50.0	53.2	160525	10.93	7.85	71.82	3.08	28.18	21.05	5.93	7.8	0.26	3.33	7.54	96.67	13.22	12.78	34.27	15.56	18.71	54.60
उत्तरप्रदेश	74.1	78.1	834531	9.34	6.78	72.59	2.56	28.41	93.53	25.64	8.59	0.59	6.87	8.00	93.13	24.12	22.47	117.65	69.54	48.11	40.89
अखिल भारत	28.6	33.0	1920864	8.38	5.75	68.62	2.63	31.38	193.16	60.62	2.47	0.08	3.24	2.39	96.76	115.59	111.85	308.75	136.28	172.47	55.86

(स्रोत : NSS, 50 वां दौर, जुलाई 1993- जून 1994, रिपोर्ट संख्या 424)

सारणी 1.3 : विगत 365 दिनों में चावल उत्पादक परिवारों व अन्य परिवारों में चावल के उपभोग, घरेलू व बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग का विवरण (ग्रामीण)

राज्य	गेहूं बोने वाले परिवार										अन्य परिवार							सभी परिवार			
	कुल परिवारों में चावल उत्पादक परिवारों का %	कुल व्यक्तियों में चावल उत्पादक परिवारों के व्यक्तियों का %	चावल उत्पादक परिवारों के व्यक्तियों की संख्या (00)	कुल चावल उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	घरेलू उत्पाद से चावल उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	कुल चावल उपभोग में घरेलू उत्पाद से चावल उपभोग का %	बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	कुल चावल उपभोग में बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग का %	चावल उत्पादक परिवारों का कुल चावल उपभोग प्रति वर्ष (लाख टन)	चावल उत्पादक परिवारों का बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग प्रति वर्ष (लाख टन)	कुल उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	घरेलू उत्पाद से चावल उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	कुल उपभोग में घरेलू उत्पाद से चावल उपभोग का %	बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग प्रति व्यक्ति प्रति माह (किलो)	कुल चावल उपभोग में बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग का %	अन्य परिवारों का कुल चावल उपभोग प्रतिवर्ष (लाख टन)	अन्य परिवारों का बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग प्रतिवर्ष (लाख टन)	कुल चावल उपभोग प्रतिवर्ष (लाख टन)	घरेलू उत्पाद से चावल उपभोग (लाख टन)	बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग (लाख टन)	बाहरी उत्पाद से चावल उपभोग का कुल चावल उपभोग में %
आन्ध्रप्रदेश	34.0	37.8	172533	12.48	5.77	46.2	6.71	53.8	25.84	13.89	11.15	0.11	0.99	11.04	99.01	37.99	37.61	63.83	12.33	51.5	80.7
आसाम	65.9	69.9	126285	13.05	10.2	78.2	2.85	21.8	19.78	4.32	11.34	0.32	2.8	11.02	97.20	7.40	7.19	27.18	15.67	11.51	42.3
बिहार	57.1	61.4	377721	8.76	5.57	63.6	3.19	36.4	39.71	14.46	6.73	0.17	2.53	6.56	97.47	19.18	18.69	58.89	25.74	33.15	56.3
गुजरात	17.0	18.9	48915	3.2	2.08	65.0	1.12	35.0	1.88	0.66	1.76	0.03	1.70	1.73	98.30	4.43	4.28	6.31	1.37	4.94	78.3
कर्नाटक	20.8	23.4	63728	9.21	6.99	75.9	2.22	24.1	7.60	1.83	4.32	0.04	0.93	4.28	99.1	11.16	11.56	19.26	5.87	13.39	69.5
केरल	11.5	12.5	22237	10.47	5.52	52.7	4.95	47.3	2.79	1.32	9.19	0.07	0.76	9.12	99.24	17.17	17.03	19.96	1.61	18.35	91.9
मध्यप्रदेश	42.0	43.4	211128	10.75	7.62	70.9	3.13	29.1	27.24	7.93	2.44	0.07	2.87	2.37	97.13	8.06	7.83	35.30	19.54	15.76	44.6
महाराष्ट्र	22.4	23.9	107156	6.54	4.6	70.3	1.94	29.7	8.41	2.49	1.89	0.01	0.53	1.88	99.47	7.74	7.70	16.15	6.00	10.15	62.8
उड़ीसा	63.8	69.7	194751	15.63	8.88	56.8	6.75	43.2	36.53	15.77	14.55	0.54	3.71	14.01	96.29	14.74	14.23	51.27	21.27	30.00	58.5
तमिलनाडु	24.4	28.1	100575	11.53	6.99	60.6	4.54	39.4	13.92	5.48	10.01	0.13	1.30	9.88	98.70	30.91	30.51	44.83	8.84	35.99	80.3
उत्तरप्रदेश	55.6	58.1	626921	5.19	3.74	72.1	1.45	27.9	39.04	10.91	2.32	0.13	5.60	2.19	94.40	12.59	11.88	51.63	28.88	22.75	44.1
पश्चिम बंगाल	56.9	61.7	307243	14.72	9.22	62.6	5.5	37.4	54.27	20.28	12.16	0.24	1.97	11.92	98.03	27.38	27.28	82.1	33.99	48.11	58.6
अखिल भारत	39.7	43.2	2517379	9.48	6.08	64.1	3.4	35.9	286.60	102.79	5.21	0.1	1.92	5.11	98.08	207.10	203.12	493.7	187.79	305.91	62.0

(स्रोत : NSS 50 वां दौर, जुलाई 1993 - जून 1994, रिपोर्ट संख्या 424)

सारणी 1.4 : भारत में कृषि क्षेत्र के लिये विभिन्न निवेशों का उत्पादन

वर्ष	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1997-98
कृषि ट्रैक्टर (लाख में)	-	-	-	0.71	.42	2.797
नाइट्रोजनी खाद (लाख टन)	0.09	0.99	8.3	21.64	72.35	105.38
फास्फोरस खाद (लाख टन)	0.09	0.54	2.29	8.42	25.36	31.91
कृषि में विद्युत खपत (% में)	12.6	10.7	8.8	11.2	16.8	19.8*
कृषि में विद्युत(अरब kWH में)	0.64	1.81	4.91	12.40	44.4	83.3

*1996-97 के आकड़े

(Economic Survey, 1998-99 GOI)

खरीदकर कर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत वितरित किया गया। फलों और सब्जियों के उत्पादन का न केवल काफी बड़ा हिस्सा बाजार के जरिये वितरित हो रहा है बल्कि इनका वितरण बहुत थोड़े से बाजारों में सकेन्द्रित है। इस बारें में 1998-99 का आर्थिक सर्वेक्षण यह जानकारी देता है :

> "भारत 10 करोड़ टन से अधिक फल व सब्जियों का उत्पादन करता है जो तमाम ग्रामीण, थोक संग्रह (assembling) और आखिरी (terminal) बाजारों के जरिये वितरित होते हैं।..... फलों का आगमन दस बड़े शहरों दिल्ली, कलकत्ता, बंगलोर, चेन्नई, मुम्बई, जयपुर, विजयवाड़ा, नागपुर, लखनऊ और बनारस में केन्द्रित हैं। ये शहर सब्जियों के आगमन के भी 75% के लिये भी जिम्मेदार हैं, जिसमें से केवल मुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली व पूना ही सब्जी आगमन के 55% के लिये जिम्मेदार हैं। सब्जियों के मामले 40% व फलों के मामले में 13% का (transit trade) होने कारण **दिल्ली व कलकत्ता** महत्वपूर्ण शहर हैं। **दिल्ली, कलकत्ता और मुम्बई में कुल फल उत्पादन का 59.1% और सब्जी उत्पादन का 46.3% पहुंचता है।** 20 लाख या ज्यादा की आबादी वाले शहर फल व सब्जियो के transit trade के 66.6% तक के लिये nodal point का कार्य करते हैं। 1988 मे किये गए एक अध्ययन में पाया गया कि 5 लाख से अधिक (1981 जनगणना) वाले 48 शहरों मे फलों व सब्जियों के 102 बाजार काम करते थे, जिनमे से 54 बाजारो का ही नियमन (regulation) हो रहा था। फलों का थोक व्यापार 65 बाजारों में होता है जबकि 81 बाजार सब्जियों का थोक व्यापार निपटाते हैं। इन बाजारो मे बिकने वाले फल व सब्जियो के दाम मांग व पूर्ति की बाजार की शक्तियों से निर्धारित होते है।" (Economic Survey, 1998-99, पृष्ठ 124-25)

इसी प्रकार हमें कृषि-उत्पादों के बाजारीकरण के दर्शन पशुधन क्षेत्र और विशेषकर दूध डेयरी क्षेत्र के उत्तरोत्तर विकास में होते है। भारत में दुग्ध उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा बाजार में जा रहा है। यह सही है कि कुल दुग्ध उत्पादन में सीमांत व छोटे किसानों का योगदान 50% से ज्यादा है, लेकिन इन उत्पादों की खरीद, संसाधन (processing) व विपणन के बड़े हिस्से को विशालकाय कोआपरेटिव उद्योगों ने अपने नियंत्रण में कर लिया हैं (गुजरात में आनंद इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है)। इस क्षेत्र में पूंजीवादी विकास का सामान्य चरित्र होता है कि बड़ा उद्यम सबसे कठिन और रूखा काम यानी जानवरों की देख -भाल का काम तो मेहनतकशों–सीमांत व गरीब किसानों–के लिये छोड़ देता हैं लेकिन उनके उत्पादों के संसाधन (processing) व विपणन को अपने हाथ में लेकर फायदा उठाता है।

इस प्रक्रिया में होता यह है कि दूध बेचकर परिवार की आय बढ़ाने के प्रयास में गरीब किसान अपने परिवार के बच्चों द्वारा दूध की खपत में भी कटौती करने को मजबूर हो जाते है। भारत के ज्यादतर गांवों में, दुग्ध उत्पादक गरीब किसानों के बच्चों का दूध भी बाजार में बेचने के लिये कैसे छीन लिया गया हैं, इसका नजारा देखने को आसानी से मिल जाता है। तथ्य के तौर पर इतना ही कि भारत में डेयरी कोआपरेटिव ने 90 लाख दुग्ध उत्पादको को अपना सदस्य बनाकर अपने साथ जोड़ रखा है और उनके द्वारा उत्पादित दुग्ध का ये कोआपरेटिव डेयरियां विपणन करती है। इसी पूंजीवादी विकास को बुर्जुआ बुद्धिजीवी "आपरेशन फ्लड" का नाम देते है।

कृषि के बढ़ते बाजारीकरण (commercialisation) को एक अन्य दृष्टिकोण से भी समझ जा सकता है। वह है कृषि में निवेश (input) के बढ़ते व्यापारिक चरित्र के दृष्टिकोण से। विगत पांच दशकों में कृषि में खादों, उन्नत बीजों, मशीनों, बिजली वगैरह की खपत तेजी से बढ़ी है और उपरोक्त सभी निवेश (input) की चीजों के लिये कृषि-उत्पादक – यानी किसान – बाजार पर ही निर्भर रहता है। कृषि में लगने वाली आवश्यक सामग्री बाजार से खरीदने के लिये किसान को मुद्रा (money) की दरकार होती हैं जो वह अपने उत्पाद को बाजार में बेचकर ही जुटा सकता हैं। कृषि का बढ़ता व्यापारिक चरित्र (commercial character) जहां खादों, बीजों, मशीनों, बिजली की बढ़ी मात्रा की मांग बाजार के समक्ष पेश कर पूंजीवाद के लिये गृह-बाजार के विस्तार में योगदान करता है, वही कृषि में मशीनों, खादों, बिजली, उन्नत बीजो का निवेश उत्पादक को कृषि-उत्पाद बाजार में बेचने को बाध्य कर कृषि-उत्पाद के व्यापारिक चरित्र में और वृद्धि करता है। सारणी 1.4 कृषि के सबंध में कुछ प्रमुख निवेश सामग्रियों के बारे में पिछले पांच दशक के आकड़ें पेश कर रही है, जो हमें अप्रत्यक्षतः कृषि के बढ़ते व्यापारिक चरित्र की जानकारी देते हैं। भारत में 1997-98 में प्रति वर्ष करीब 2 लाख 80 हजार कृषि ट्रैक्टरों, 105 लाख टन नाईट्रोजन खाद 32 लाख टन फास्फोरस खाद का उत्पादन हो रहा था और कृषि क्षेत्र में बिजली की खपत 83 अरब यूनिटें थी जो कि देश में बिजली की कुल खपत का 30% हैं। इन सभी मामलों में 1951 में स्थिति यह थी कि इनका उत्पादन खपत आज की तुलना में लगभग नगण्य ही था। इससे कृषि व्यवस्था में बाजारीकरण (commercilisation) का कितना विकास हो गया है, इसका एक अंदाज लगाया जा सकता है।

II

सामाजिक श्रम विभाजन

अभी तक हम भारतीय कृषि के क्षेत्र में बाजार अर्थव्यवस्था का कितना विकास हो चुका है, इसके बारे में चर्चा कर रहे थे। अब बात को आगे बढ़ाते हुए हम उन अन्तर्निहित प्रक्रियाओं पर विचार करेंगे जो बाजार के विकास की प्रक्रिया को आगे बढाती हैं। पूंजीवाद के लिए गृह-बाजार के विकास और विस्तार को समाज के आर्थिक जगत में चलने वाली दो प्रकियाएं आगे बढ़ाती हैं, ये हैं:

(1) सामाजिक श्रम विभाजन की प्रक्रिया

(2) किसान समुदाय के विभेदीकरण की प्रक्रिया

पहली प्रक्रिया, यानी सामाजिक श्रम विभाजन की प्रक्रिया, जहाँ माल-अर्थव्यवस्था का विस्तार कर उसके प्रभाव में वृद्धि करती जाती है वही दूसरी प्रक्रिया, यानी किसान समुदाय के विभेदीकरण की प्रक्रिया,माल अर्थव्यवस्था को एक नई ऊँचाई पर ले जाती है और

बाजार के असाधारण प्रभुत्व को स्थापित करते हुए उसे पूंजीवाद में रूपान्तरित कर डालती है। दरअसल, किसान समुदाय में विभेदीकरण की प्रक्रिया माल उत्पादन के लिये गृह-बाजार का विस्तार तो करती ही है, साथ ही किसान समुदाय के एक विशाल हिस्से को आर्थिक रूप से बर्बाद कर वहां पहुंचा देती है जहां इस विशाल हिस्से के पास श्रम-शक्ति के इन मालिकों के पास, बाजार में बेचने के लिये अपनी श्रम-शक्ति के अलावा और कोई माल नही होता। इस प्रकार किसान समुदाय के विभेदीकरण की प्रक्रिया न केवल उत्पादो को माल बनाकर माल अर्थव्यवस्था के विकास मे योगदान करती है, बल्कि श्रम-शक्ति को भी माल में तब्दील कर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना करती है।

> **"माल अर्थव्यवस्था का आधार सामाजिक श्रम विभाजन है।** मैन्यूफैक्चर (Manufacturing) उद्योग कच्चे माल के उद्योग से अलग हो जाता है, और इनमे से हर एक छोटी विविधताओ मे और विभक्त हो जाते है जो विशिष्ट उत्पादो का माल के रुप में उत्पादन करते है और अन्य सभी उत्पादो से उनका विनिमय करते है। इस प्रकार, माल अर्थव्यवस्था का विकास पृथक व स्वतंत्र शाखाओं की संख्या में वृद्धि की ओर ले जाता है; इस विकास में यह प्रवृति होती है कि यह न केवल प्रत्येक पृथक उत्पाद के निर्माण को ही नहीं, बल्कि एक उत्पाद के हर पृथक हिस्से के निर्माण को भी - और केवल एक उत्पाद के निर्माण को ही नहीं बल्कि एक उत्पाद को उपभोग के लिये तैयार करने की अलग-अलग क्रियाओं तक को भी, उद्योग की विशेष शाखा में रूपान्तरित कर देती है। प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के मातहत समाज समांग आर्थिक इकाई समूह से बनता था। पितृसत्तात्मक किसान परिवार, आदिम ग्राम समुदाय, सामंती जमींदारी (feudal manors), इस प्रकार की हर इकाई विभिन्न प्रकार के कच्चे माल को हासिल करने से लेकर उन्हें अन्तिम उपभोग के लिऐ तैयार करने तक की आर्थिक गतिविधि के सभी रूपों में संलग्न रहती थी। माल-अर्थव्यवस्था के मातहत विषमांग (heterogeneous) आर्थिक इकाईयां अस्तित्व में आ जाने से अर्थव्यवस्था की पृथक-पृथक शाखाओं की संख्या बढ़ती है, और एक ही प्रकार की आर्थिक गतिविधि को अंजाम देने वाली इकाइयों की संख्या घटती है। सामाजिक श्रम विभाजन का यह उत्तरोत्तर विकास पूंजीवाद के लिये गृह-बाजार के निर्माण की प्रक्रिया मे प्रमुख कारक है।...
>
> "कहने की जरूरत नही है कि मैन्यूफैक्चर (manufacturing) का कच्चे माल उद्योग से, मैन्यूफैक्चर (manufacturing) का कृषि से, उपर्युक्त वर्णित अलगाव स्वयं कृषि को उद्योग में, अर्थव्यवस्था की माल-उत्पादक शाखा में रूपान्तरित कर देता है।
>
> **"इस प्रकार, सामाजिक श्रम विभाजन माल अर्थव्यवस्था के और पूंजीवाद के विकास की समग्र प्रक्रिया का आधार है।"** (लेनिन, Development of Capitalisom in Russia, Collected Works, Vol-3, पृष्ठ 37-39, अनुवाद व शब्दों पर जोर हमारा)

दरअसल किसी भी समाज में पूंजीवादी विकास का यह चरित्र होता है कि कृषि पर आधारित आबादी गैर कृषि क्षेत्र पर निर्भर आबादी की तुलना में घटती जाती है।

> "गैर-कृषि आबादी की तुलना में कृषि आबादी को लगातार कम करते जाना पूंजीवादी उत्पादन का निश्चित चरित्र है...।" (कार्ल मार्क्स, Capital, Vol--III, अनुवाद हमारा है)
>
> "व्यापारिक व औद्योगिक आबादी में वृद्धि के बिना कोई पूंजीवाद की कल्पना नही कर सकता और हर आदमी जानता है कि परिघटना सभी पूंजीवादी देशों में सबसे अधिक स्पष्टता के साथ दिखाई देती है।" (लेनिन, Development of Capitalism in Russia Collected Works, Vol.-3)

गृह बाजार के संदर्भ में इस प्रक्रिया का बहुत महत्व है, क्योंकि कृषि आबादी की तुलना में व्यापारिक व औद्योगिक क्षेत्र में कर्मकरों (Workers) की बढ़ोत्तरी जहां एक तरफ बाजार में व्यक्तिगत उपभोग के कृषि उत्पादों की मांग में वृद्धि करती है, वहीं उद्योगों में उत्पादक उपभोग के लिऐ कच्चे माल के रूप में कृषि उत्पादों (नकदी फसलों, Cash Crops) की मांग भी तुलनात्मक रूप से बढ़ती जाती है। यह दोनों ही प्रवृत्तियां कृषि में "बाजार के लिये उत्पादन" की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती हैं। भारत में पिछले पांच दशकों में गैर-कृषि क्षेत्र मे कार्यरत कर्मकरों की और इस प्रकार गैर-कृषि क्षेत्र (व्यापारिक व औद्योगिक दोनों) पर निर्भर आबादी, कृषि क्षेत्र के सापेक्ष, तेजी से बढ़ती नजर आती है। (देखे, सारणी 2.1)

1961 से लेकर 1991 तक आंकड़े यह बताते हैं कि 1971 के बाद कृषि क्षेत्र में लगे मुख्य कर्मकरों (main workers) का प्रतिशत कम होता गया है जबकि गैर-कृषि में लगे मुख्य कर्मकरों का प्रतिशत बढ़ता गया है। यानि कृषि क्षेत्र पर निर्भर आबादी का हिस्सा (कुल आबादी में) इस दौर में कम होता गया है। लेकिन भारत को अर्द्ध-सामंती मानने वाले साथियों की नजर में यह कृषि में पूंजीवाद के हावी होने के लिये काफी नहीं है। उनकी नजर में यदि कृषि में पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली हावी हो गई है तो कृषि पर निर्भर आबादी तुलनात्मक रूप से (relatively) ही नहीं घटती चाहिए, बल्कि निरपेक्षतः (absolutely) भी घटनी चाहिए। यानि उनके अनुसार ऐसी स्थिति में कृषि में लगे कर्मकरों (workers) का प्रतिशत ही नहीं, बल्कि उनकी संख्या भी घटनी चाहिए। इसके पीछे सामान्यतः तर्क यही होता है कि कृषि में पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप नई तकनीक, नई मशीनों, नई पद्धति वगैरह के रूप में पूंजी निवेश के परिणामस्वरूप स्थिर पूंजी (constant capital) व परिवर्ती पूंजी (variable capital) का अनुपात बढ़ना चाहिऐ और उसके फलस्वरूप कृषि में पहले से कम कर्मकरों (workers) की आवश्यकता पड़नी चाहिये। सामान्य परिस्थितियों में यह तर्क ठीक होता, लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में ऐसा नहीं भी हो सकता है। कृषि में पूंजीवादी विकास के दौर में, यदि कृषि भूमि का क्षेत्रफल बढ़ता रहे और साथ ही साथ पहले से ज्यादा श्रम- की -गहनता (labour intensive) वाली फसलों या तकनीक पर जोर बढ़े तो कुछ समय तक कृषि में लगने वाले क्षमिकों की संख्या में कमी होने की बजाय बढोत्तरी हो सकती है। भारत में जहां 1951 के बाद कुल बोये गए क्षेत्रफल में (शुद्ध बोये गए क्षेत्रफल में भी) बढ़ोतरी हुई है, वहीं कृषि में पूंजीवादी विकास के दौरान वाणिज्यिक खेती पर जोर तुलनात्मक रुप से बढ़ने और अनाज की खेती में भी नई *'बीज- खाद की तकनीक'* के कारण

सारणी 2.1 : व्यवसायगत श्रेणी के अनुसार मुख्य कर्मकरों का वितरण

क्षेत्र व्यवसायगत	1961	1971	1981	1991
(i) कृषि व संबद्ध क्षेत्र	71.8	72.1	70.6	66.7
(ii) गैर कृषि	28.2	27.9	29.1	33.3
(iii) खनन	0.5	0.5	0.5	0.6
(iv) मैन्यूफैचरिंग	10.6	9.5	10.9	10.2
(vi) निर्माण	1.1	1.2	1.5	1.9
(vii) व्यापार व वाणिज्य	4.0	5.6	5.9	7.5
(viii) यातायत भण्डारण व संचार,	1.6	2.4	2.5	2.8
(ix) अन्य सेवायें	10.4	8.7	8.1	10.2

(स्रोत : जनगणना)

भी प्रति इकाई क्षेत्रफल में श्रमिकों की आवश्यकता बढ़ी है। साथ ही साथ, कृषि पर निर्भर आबादी का एक हिस्सा तो दुरअसल गुप्त ग्रामीण बेशी आबादी (latent rural over population) में वृद्धि की अभिव्यक्ति है। यह सब कारण मिलकर यह समझने मदद देते हैं कि 1951 से 1991 के बीच कृषि क्षेत्र के कर्मकरों की संख्या निरपेक्षतः क्यों नहीं घटी । लेकिन अब 1990 दशक में पहली बार कृषि क्षेत्र में कार्यरत कर्मकरों की संख्या के निरपेक्षतः भी घटने के संकेत दिखाई देने लगे हैं (देखें; सारणी 2.2)। अखिल भारतीय स्तर पर 1993-94 व 1999-2000 के बीच के समयान्तराल में कुल कर्मकरों में से कृषि क्षेत्र में लगे कर्मकरों के प्रतिशत में 4.1% की गिरावट आई हैं। इस दौर में, कृषि क्षेत्र के कर्मकरों (workers) की संख्या 23.9096 करोड़ से घटकर 23.5597 करोड़ रह गई है यानी कृषि में, कर्मकरों (worker) की संख्या में करीब 35 लाख की कमी हुई है। यदि केवल ग्रामीण क्षेत्र को ही ले तो कृषि में लगे कर्मकरों के हिस्से में 1993-94 से 1999-2000 के बीच 2.3% की गिरावट हुई। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में भी कृषि क्षेत्र में लगे कर्मकरों की संख्या में 21 लाख की गिरावट आई है ।

सारणी 2.2 से हमें यह पता चलता है कि भारत के कुल कर्मकरों (workers) में से 40.2% अब स्पष्टतः गैर कृषि क्षेत्र में कार्यरत हैं। इसी से हमें सामाजिक श्रम विभाजन के स्तर का एक अंदाज लग जाना चाहिये (हालांकि कृषि क्षेत्र भी कोई समांग (homogeneous) क्षेत्र नहीं है और इसके भीतर भी सामाजिक श्रम विभाजन मौजूद है और विगत दशकों में बढ़ा है, लेकिन उस पर हम बाद में आएंगे)। हमारी सामान्य बातचीत में गांवों को कृषि क्षेत्र का पर्याय मान लिया जाता है। लेकिन सारणी 2.2 से ग्रामीण समाज की भी एक तस्वीर उभरती है। ग्रामीण भारत में कर्मकरों (workers) का 23.9% हिस्सा अब स्पष्टतः कृषि क्षेत्र से बाहर यानी गैर-कृषि क्षेत्र (non-farm sector) में कार्य करने लगा है। और यह विकास बहुत महत्वपूर्ण है, जिसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए । ग्रामीण क्षेत्रों मे कार्यरत करीब 7.13 करोड़ गैर-कृषि कर्मकरों (workers) में से करीब 4.0 करोड़ तो अनौपचारिक क्षेत्र (informal sector) में विविध प्रकार की गतिविधियों में लगे हुए हैं, शेष औपचारिक क्षेत्र में यानी सरकारी नौकरियों, बड़े उद्योगों, कोओपरेटिवों में काम कर रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत गैर-कृषि क्षेत्र के कर्मकरों (workers) का प्रतिशत अलग-अलग राज्यों में बहुत फर्क लिये हुए है। राज्यवार नये आंकड़े तो हमारे पास फिलहाल नहीं है, लेकिन यदि 1991 की जनगणना के आधार पर बात करें तो कुल ग्रामीण कर्मकरों में गैर-कृषि कर्मकरों का हिस्सा केरल में 43.9%, पश्चिम बंगाल में 26.5%, हरियाणा में 26.2%, पंजाब में 25.8%, तमिलनाडू में 20.6%, गुजरात में 19.6% था। [जनगणना से केवल मुख्य कर्मकरों (principal status workers) की जानकारी मिलती है, कुल कर्मकरों की नहीं।] 1980 के दशक में प्रवृति यह थी कि गैर-कृषि क्षेत्र में कर्मकरों की संख्या, कृषि क्षेत्र के मुकाबले तेज गति से बढ़ रही थी। यदि यही प्रवृत्ति 1990 के दशक में भी जारी रही हो (और कोई कारण नहीं है कि ऐसा न हुआ हो) तो अब तक गैर-कृषि क्षेत्र के कर्मकरों का हिस्सा उपरोक्त राज्यों में और बढ़ा ही होगा।

ग्रामीण गैर-कृषि क्षेत्र के तुलनात्मक रूप से तेज विकास की खास बात तो यह है कि यह पारम्परिक रूप के गैर-कृषि कार्यों से काफी अलग ढंग का है। इनका मुख्य चरित्र पुरानी परम्परागत, पितृसत्तात्मक, जजमानी व्यवस्था जैसा न होकर बाजारोन्मुख व व्यापारिक है। सारणी 3.3 इनमें से कुछ तेज गति से विकास करने वाले उप-क्षेत्रों और उनकी वार्षिक विकास दर को पेश कर रही है। इस सारणी के अनुमान थोड़े पुराने अवश्य हैं (ये 1977-

सारणी 2.2 : श्रम-शक्ति का स्थानानुसार औद्योगिक वितरण (प्रतिशत में) अखिल भारत, 1993-2000 एवं 1999-2000 (0%में)

औद्योगिक विभाजन	1993-94			1999-2000			1993-94 से 1999-2000 के बीच परिवर्तन		
	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल
कृषि, वन व मछली पालन	78.4	12.3	63.9	76.1	8.8	59.8	-2.3	-3.5	-4.1
	(22.89)	(1.01)	(23.9096)	(22.68)	(0.84)	(23.5 597)	(-0.21	(-0.17)	(-0.3499)
1. खनन	0.6	1.2	0.7	0.5	0.8	0.6	-0.1	-0.4	-0.1
	(0.18)	(0.01)	(0.1,681)	(0.15)	(0.08)	(0.2241)	(-0.03)	(-0.02)	(-0.0440)
2-3 मैन्युफैक्चरिंग	7.0	23.6	10.7	7.4	22.7	11.1	+0.4	-0.9	+0.4
(Manufacturing)	(2.04)	(1.95)	(4.01)	(2.21)	(2.16)	(4.36)	(+0.17)	(+0.21)	(+0.35)
4 बिजली, गैस व जल	0.2	1.0	0.4	0.1	0.7	0.3	-1	-0.3	-0.1
	(0.06)	(0.08)	(0.1396)	(0.03)	(0.07)	(0.10.39)	(-0.03)	(-0.01)	(-0.0357)
5 निर्माण	2.4	6.3	3.2	3.3	7.9	4.4	+1.1	+1.6	+1.2
(Contruction)	(0.70)	(0.52)	(1.2, 147)	(0.98)	(0.75)	(1.7, 454)	(+0.28)	(+0.23)	(+0.5307)
6 व्यापार, होटल एवं रेस्तोरां	4.3	19.4	7.6	5.1	26.9	10.4	+0.8	7.5	-2.8
	(1.26)	(1.60)	(2.8502)	(1.52)	(2.56)	(4.0, 946)	(+0.26)	(0.96)	(+61.2444)
7 यातायात, भण्डारण व संचार	1.4	7.9	2.9	2.1	8.7	3.7	+0.7	+0.8	+0.8
	(0.4)	(0.65)	(1.0773)	(0.63)	(0.83)	(1.4623)	(+0.22)	(+0.17)	(+0.385)
8 वित्त, बीमा, भवन व व्यवसाय सेवा	0.3	3.4	1.0	0.4	4.1	1.3	+0.1	+0.7	+0.3
	(0.09)	(0.28)	(0.37)	(0.12)	(0.39)	(0.51)	(+0.03)	(+0.11)	(+0.14)
9 सामुदायिक, सामाजिक व वैयक्तिक सेवा	5.4	24.8	9.7	4.9	19.5	8.4	-0.5	-5.3	-1.3
	(1.58)	(2.04)	(3.63)	(1.46)	(1.85)	(3.30)	(-0.12)	(-0.19)	(-0.33)
कुल श्रम शक्ति	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	0.0	0.0	0.0
	(29.0950)	(8.2440)	(37.4390)	(29.8050)	(9.5140)	(39.3190)	(+0.61)	(+1.27)	(+1.88)

कोष्ठकों मे कर्मकरों की आंकलित संख्या दी गई है। यह संख्या करोड़ मे है। जहां दशमलव के बाद चार अंक तक संख्या दी गई है, वह आंकड़ा EPW से यथावत लिया गया है तथा दशमलव के बाद दो अंकों वाले आंकड़ों की गणना हमारी है। 1993-94 व 1999-2000 के परिवर्तन की गणना भी हमारी है।

स्रोत : NSS 50 वा दौर व 55 वा दौर, Economic and political weekly, March 17, 2001 मे उद्धृत

78 से 1987-88 के दौर के लिए अनुमान हैं), लेकिन ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक श्रम विभाजन के संदर्भ में बदल रही फिज़ा के बारे में हमारे सामने एक तस्वीर अवश्य खींच देते हैं। और यह तस्वीर किसी समाज में पूंजीवादी विकास के संदर्भ में बढ़ते सामाजिक श्रम विभाजन और गैर-कृषि क्षेत्र पर निर्भर आबादी का कृषि की तुलना में तेज गति से विकास की मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक अवधारणाओं के अनुसार नजर आती है।

पूंजीवाद का विकास केवल कृषि और गैर-कृषि क्षेत्र के बीच में सामाजिक श्रम विभाजन को नहीं, बल्कि कृषि क्षेत्र के भीतर भी कई नए उपक्षेत्र विकसित करता जाता है जिसके कारण कृषि क्षेत्र के भीतर ही मालों के विनिमय को बढ़ावा मिलता है और गृह-बाजार

सारणी 2.3 : गैर कृषि क्षेत्र में अधिक रोजगार वृद्धि (high emplyment growth) वाले उप-क्षेत्र (sub sectors) (1977-78 से 1987-88)

NIC कोड	वर्णन	वार्षिक विकासदर
36	विद्युत अपकरण	20.6
51	निमार्ण (Condtruction) से जुड़ी गतिविधियां	16.0
50	निमार्ण (Condtruction)	10.9
28	कागज व कागज के उत्पाद	9.8
31	रसायन व रसायन उत्पद	9.4
95	मनोरंजन व सांस्कृतिक गतिविधियां	8.5
70	थल यातायात	6.8
82-82	(realestate), व्यापार और कानूनी सेवा	6.5
99	विभिन्न सेवायें	6.2
60	खाद्य पदार्थ, पशुओं कपड़ा व पेय पदार्थ का थोक व्यापार	6.0
40-42	बिजली, गैस व जल	5.8
25	जूट कम्बल वगैरह	5.8
66	कपड़े का फुटकर व्यापार	5.2
703	मोटर गाड़ी से माल ढुलाई	15.2
262	कढ़ाई	14.6
236	पावरलूम	13.9
702	यात्रीयातायात (बस व ट्राम को छोड़ कर)	13.7
973	मोटर गाड़ी व मोटर साइकिल रिपेयर	13.2
691	होटल व ठहरने के अन्य स्थान	12.9
501	सड़क, रेलवे, बन्दरगाह वगैरह का निर्माण व रखखाव	12.9
209	कोको, चाकलेट व कनफैक्शनरी	12.2
330	लोहा व इस्पात	12.1
800	बैंकिग	12.1
500	भवन निर्माण व रखरखाव	10.7
601	खाद्य पदार्थों (अनाज व दालों छोड़कर) का थोक व्यापार	10.2
245	सिल्क वस्त्र की कताई, बुनाई वगैरह	9.5
276	लकड़ी फर्नीचर	9.0
653	बेकरी, डेयरी, अण्डे वगैरह का खुदका व्यापार	8.2

(स्रोत : National Sample Survey, "The Forgotten Sector" में उद्धत)

का विस्तार होता है। कृषि में यह कार्य कृषि के विशिष्टीकरण (specialisation of agriculture) की प्रक्रिया को अंजाम देती है। लेनिन कहते हैं:

> "वाणिज्यिक खेती का विकास स्वयं को कृषि के विशिष्टीकरण में अभिव्यक्त करता है।" (लेनिन, Development of Capitalism in Russia, Collected Works, Vol-3, पृष्ठ -255, अनुवाद हमारा है।)
>
> "विशिष्टीकरण की प्रक्रिया (process of specialisation) जो उद्योग की लगातार बढ़ती हुई शाखाओं को पैदा करते हुए उत्पादों की विविध किस्मों के निर्माण को एक दूसरे से अलग करती हैं, विशेषज्ञ कृषि जिलों (specialised agricultrual districts) (और कृषि की व्यवस्थाओं) को जन्म देते हुए, और न केवल कृषि और उद्योग के उत्पादों के बीच बल्कि कृषि के उत्पादों के बीच भी विनिमय को बढ़ावा देते हुए, स्वयं को कृषि में भी अभिव्यक्त करती है।... "
> (लेनिन, Development of Capitalism in Russia, Collected Works, Vol-3, पृष्ठ-39, अनुवाद हमारा है)

वर्तमान भारत की कृषि में भी सामाजिक श्रम विज्ञान को अभिव्यक्त करने वाली विशिष्टीकरण की प्रक्रिया स्पष्ट देखी जा सकती है। कुछ उदाहरण हम सामने रख रहे हैं:

(1) महाराष्ट्र में चीनी उत्पादन का क्षेत्र । महाराष्ट्र पूरे भारत के औद्योगिक श्वेत चीनी उत्पादन का एक तिहाई उत्पादन करता है और लगभग यह समग्र उत्पादन कोआपरेटिव क्षेत्र से आता है। महाराष्ट्र की 100 से ज्यादा कोआपरेटिव क्षेत्र की फैक्टरियों कोआपरेटिवों ने 5 लाख से ज्यादा किसानों को अपना सदस्य बना रखा है।

(II) गुजरात में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में भी कोआपरेटिवों-विशेषकर आनंद - की बदौलत दुग्ध उत्पादन और उप-उत्पादों - जैसे मक्खन, घी के उत्पाद - में विशेषज्ञता हासिल करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

(III) कर्नाटक में काफी की खेती बड़े पैमाने पर हो रही है और देश के कुल काफी उत्पादन का 70% अकेले कर्नाटक में होता है ।

(IV) केरल में प्राकृतिक रबर की खेती बड़े पैमाने पर हो रही है और देश के कुल प्राकृतिक रबर उत्पादन का 90% तथा रबर उत्पादन के तहत कुल क्षेत्रफल का 85% अकेले केरल में है।

(V) भारत चाय का दुनिया में सबसे बड़ा उत्पादक व उपभोक्ता है। देश में चाय मुख्यतः आसाम, पश्चिम बंगाल, केरल, कर्नाटक, व तमिलनाडु में पैदा की जाती है।

(VI) पंजाब, हरियाणा और कुछ हद पश्चिमी उत्तर प्रदेश के इलाके अनाज उत्पादन-मुख्य गेहूँ व चावल-के उत्पादन में विशेषज्ञ इलाके हैं। इन इलाकों में चावल की खेती का जो विस्तार विगत दशकों में हुआ है, वह विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि इन इलाको में खाया जाना वाला मुख्य अनाज चावल नहीं, गेहूं है। चावल का उत्पादन मुख्यतः बाजार के लिये होता है।

उपरोक्त चन्द उदाहरण भारतीय कृषि में पूंजीवादी विकास के फलस्वरुप अस्तित्व में आ रही और विकसित हो रही कृषि की विशिष्टीकरण (specialisation of agriculture) की प्रक्रिया को दिखाते हैं।

अब हम गेहूँ व चावल जैसे महत्वपूर्ण अनाजों के मामले में उपभोग के पैटर्न के आधार पर ग्रामीण भारत में सामाजिक श्रम विभाजन के स्तर का अंदाज लगाने का एक प्रयास करेंगे।

इस आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक श्रम विभाजन की झलक देखने के लिये हमें सारणी 1.2 की कालम सख्या 2 पर नजर डालनी होगी। समग्र भारत के ग्रामीण इलाकों के कुल परिवारों में 39.7% परिवार ही चावल की खेती करते हैं। जाहिर हैं शेष 60.3%

1.3

परिवारों की कुल चावल की खपत का बहुत बड़ा हिस्सा (95% से भी अधिक) बाहरी उत्पाद से आयेगा, क्योंकि वे स्वयं चावल की खेती नहीं करते और चावल की खपत के लिए ऐसे परिवारों को बाजार पर निर्भर होना पड़ेगा (देखें; कालम 16)। अलग-अलग राज्यों के बारे में भी कालम (2) से स्थिति स्पष्ट हो जाती हैं। कई राज्यों - मसलन आंध्र प्रदेश, केरल, तमिलनाडु वगैरह - में जहां कि चावल मुख्य फसल है और लगभग सभी परिवार चावल खाते हैं, ग्रामीण आबादी की एक अल्प संख्या ही चावल की खेती करती है। शेष आबादी अन्य कामों में लगी हुई है और चावल उत्पादक क्षेत्र से विनिमय के जरिये चावल हासिल करती है। उपभोग में आने वाले मुख्य अनाज के उत्पादन के क्षेत्र से बड़ी संख्या में निकल कर कर्मकरों (workers) का दूसरे क्षेत्र में कार्य करने लगाना, सामाजिक श्रम विभाजन की ही अभिव्यक्ति है (हालाकि इसमें चावल के खेतों पर कार्यरत भूमिहीन कृषि मजदूरों की आबादी भी सिमट जाती है, लेकिन फिर भी एक इसमें एक महत्वपूर्ण हिस्सा गैर कृषि क्षेत्र या फिर कृषि क्षेत्र के ही फसलों को उत्पादकों व उनमें लगे श्रमिकों का है । यह बात अगले अध्यायों में पेश तथ्यों से स्पष्ट हो जाती है)। इनमें भी केरल का मामला विशेष रुप से उल्लेखनीय है। केरल के ग्रामीण इलाकों में चावल मुख्य फसल है और कुल अनाज उपभोग में चावल का हिस्सा 91.9% है, फिर भी यहाँ के ग्रामीण इलाकों में केवल 11.5% परिवार ही चावल की खेती करते है। जाहिर है कि केरल के ग्रामीण इलाकों में चावल उपभोग के लिये बाजार पर निर्भरता बड़े पैमाने पर होगी। इसलिये कालम (22) से मिलने वाली यह जानकारी कतई आश्चर्यजनक नहीं लगती कि केरल के ग्रामीण इलाकों में कुल चावल उपभोग का 91.9% बाहरी उत्पाद से आता है।

अब गेहूँ के उपभोग को लें (सारिणी 1.3) गेहूं का बड़े पैमाने पर उपभोग करने वाले राज्यों में केवल राजस्थान व उत्तरप्रदेश ही ऐसे हैं जिनके ग्रामीण क्षेत्रों में 50% या इससे ज्यादा परिवार (राजस्थान के मामले 50% व उत्तर प्रदेश में 74.1%) गेहूँ की खेती करते नजर आते है। बिहार के ग्रामीण इलाकों में 42.8%, गुजरात में 21%, हरियाणा में 45.2%, मध्य प्रदेश में 37.9%, पंजाब में 36.9% परिवार गेहूँ की खेती करते हैं। पंजाब और हरियाणा के आकड़े बाजार के विकास के सन्दर्भ में तब और उल्लेखनीय हो जाते हैं जब हम यह ध्यान रखें कि इन दोनों राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में कुल अनाज उपभोग में गेहूँ का हिस्सा 90% से कहीं अधिक है और यहाँ के गेहूं उत्पादक न केवल अपने राज्य के गेहूं न बोने वाले परिवारों की आवश्यकता के अनुरुप गेहूँ का उत्पादन करते है बल्कि दूसरों राज्यों के लिये भी गेहूं इन दोनों राज्यों से जाता है । सार्वजनिक वितरण के लिये फूड कारपोरेशन आफ इण्डिया (FCI) व अन्य संस्थाओं द्वारा की जाने वाली गेहूँ की खरीद का बड़ा हिस्सा पंजाब व हरियाणा (और काफी हद तक पश्चिमी उत्तर प्रदेश) से ही आता है। फिर भी, इन दोनों राज्यों में ग्रामीण क्षेत्र के आधे से कम परिवार ही गेहूँ का उत्पादन करते हैं।

यह विश्लेषण हमें ग्रामीण क्षेत्र में मौजूद सामाजिक श्रम-विभाजन के बारे में यह महत्वपूर्ण जानकारी दे रहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आधे से अधिक परिवार अनाज उत्पादन के क्षेत्र से बाहर के रोजगार में लगे है और ये उपभोग के लिये अनाज को बाजार में विनिमय के जरिये हासिल कर रहे हैं।

III

किसान समुदाय का विभेदीकरण

अभी तक हमने यह देखा कि माल-उत्पादन को लगातार बढ़ते सामाजिक श्रम विभाजन की प्रकिया के परिणामस्वरुप गृह-बाजार उपलब्ध होता है। यह प्रकिया पूंजीवाद के

Hectare = 2.46 Acre

of peasantry) की प्रकिया पर चर्चा करेंगे जो बाजार का विस्तार तो करती ही है, साथ ही साथ जो माल अर्थव्यवस्था को पूंजीवाद में भी तब्दील करती जाती है। इस प्रकिया के तहत बर्बाद हुई किसान समुदाय की बहुसंख्यक आबादी उत्पादन के साधनों से हाथ धो बैठने के कारण माल-उत्पादक के रुप में अपना अस्तित्व खो देती है। इसके परिणामस्वरुप पहले स्वयं माल-उत्पादक रहा आबादी का एक हिस्सा अब अपनी आवश्यकता पूरी करने लिये अन्य मालों के साथ-साथ वह माल भी बाजार से खरीदने को बाध्य हो जाता है जिसका उत्पादन वह पहले स्वयं किया करता था, और इस प्रकार बाजार का विस्तार होता है। वहीं दूसरी तरफ यह तबका बाजार से अपनी आवश्यकता के सामान को हासिल करने की एवज में अपनी श्रम शक्ति को माल के रुप में बाजार में विनिमय के लिये ले जाने को बाध्य होता है (क्योंकि बाजार में माल के रुप में मौजूद सामानों को विनिमय के जरिये ही हासिल किया जा सकता है और स्वयं की बर्बादी के कारण उत्पादन के साधनों से हाथ धो चुके इंसानों के पास बाजार में विनिमय के लिये श्रम-शक्ति के अलावा और कोई माल नहीं होता है), और इस प्रकार पूंजीवाद का जन्म होता है।

सारणी 3.1 : प्रचालित भू-जोतों की श्रेणियों के अनुसार परिवारों का वितरण Hect.

परिवारिक प्रचालित भू-जोत की श्रेणी	% वितरण: परिवारो का		% वितरण: प्रचालित क्षेत्रफल का	
शून्य	19.78		-	
0.002 से कम	2.00		-	
0.002-0.20	20.28	55.43	1.18	5.5
0.21-0.40	7.94		2.16	
0.41-0.50	5.37		2.16	
0.5-1.00	14.66		10.02	
1.01-2.00	6.75		18.55	
2.01-3.00	2.95		14.9	
3.01-4.00	2.10		9.34	
4.01-5.00	0.97		8.60	
5.01-6.00	1.20		4.93	
6.01-8.00	-		7.50	
8.01-10.00	0.66		5.43	
10.01-12.00	0.34		3.43	
12.01-20.00	0.56	1.06	7.61	15.24
20.00 से अधिक	0.16		4.20	

> "किसान समुदाय का विभेदीकरण (differentiation of peasantry) पूंजीवाद के लिये गृह-बाजार का निर्माण करता है।" (लेनिन, Development of Capitalism in Russia Collected Works Vol-3, पृष्ठ 181, अनुवाद हमारा है)
>
> "वह प्रकिया, जिससे उजरती श्रमिकों के वर्ग का निर्माण होता है, किसान समुदाय के दो स्तरों मे विभाजन से मिलकर बनती है: (1) किसान (farmers) जो कि कृषि को उद्योग के रुप में लेते है, और (2) उजरती श्रमिक । इस प्रकिया को अक्सर किसान समुदाय का विभेदीकरण (differentiation of peasantry) का नाम दिया जाता है।.....
>
> "यह प्रकिया असमान तरीके से चलती है। उजरती श्रमिकों के वर्ग के साथ-साथ हम पितृसत्तात्मक व्यवस्था की मौजूदगी और नई, पूंजीवादी व्यवस्था को निर्मित होते देखते हैं । उजरती श्रमिकों का वर्ग एक अथवा दूसरे तरीके से भूमि से जुड़ा रहता है : इसके फलस्वरुप यह प्रकिया अत्यन्त नानाविध रुपों में नजर आती है। (लेनिन, Marxist Views on the Agrarian Question, Collected Works, Vol-6 पृष्ठ 341, अनुवाद हमारा है)।

"अब हम पूंजीवादी उत्पादन पर आते है, यानी कि, साधारण माल-उत्पादों के बजाय हमारे सामने, एक तरफ उत्पादन के साधनों के स्वामी हैं, और दूसरी तरफ हैं श्रम शक्ति को बेचने वाले उजरती श्रमिक। छोटे उत्पादक का उजरती श्रमिक में रूपान्तरण इस पूर्व कल्पना पर आधारित है कि यह उत्पादन के साधन - भूमि, यंत्र, वर्कशाप, वगैरह - से हाथ धो चुका है, यानी कि वह "कंगाल", "तबाह" हो चुका है।..... उत्पादकों के एक हिस्से की उत्पादन के साधनों से "मुक्ति" निश्चित रूप से यह पूर्वकल्पना करती है कि वे [उत्पादन के साधन - अनुवादक] दूसरे के हाथों में जा चुके हैं; पूंजी में रूपान्तरित हो चुके है; इसके फलस्वरूप पूर्वकल्पना करती है कि इन उत्पादन के साधनों के नए स्वामी उस उत्पाद को, जिसका पहले उत्पादक स्वयं उपभोग कर सकता था, माल के रूप में उत्पादित करते हैं, यानी कि गृह-बाजार का विस्तार करते हैं; यह पूर्वकल्पना करती है कि उत्पादन का विस्तार करने के फलस्वरूप उत्पादन के साधनों के नए स्वामी बाजार के समक्ष नए यंत्रों, कच्चे मालों, यातायात के साधनों, वगैरह की और उपभोग की वस्तुओं की मांग पेश करते हैं (इन नए स्वामियों का समृद्धिकरण उनके उपभोग में वृद्धि की स्वाभाविक ही पूर्व - कल्पना करता है)। यह भुला दिया जाता है कि बाजार के लिये किसी भी प्रकार से महत्वपूर्ण यह नहीं हैं कि उत्पादक खुशहाल रहें बल्कि यह है कि उनके पास मुद्रा (money) हो; पितृसत्तात्मक किसान जो पहले मुख्यतः प्राकृतिक अर्थव्यवस्था का संचालन करता था, की खुशहाली में गिरावट का उसके अधिकार में मौजूद मुद्रा में वृद्धि के साथ काफी मेल है क्योंकि इस प्रकार का किसान जितना ही कंगाल होता जाता है, उतना ही

सारणी 3.2 : ग्रामीण परिवार व खेत जुताई के संसाधन

राज्य	भारवाही पशुओं (draught ammal) की संख्या के आधार पर % वितरण				ट्रैक्टर व पावर टिलर रखने वाल परिवार का %		परिवारों का % जिनके पास न तो ट्रैक्टर है,न ही भारवाही पशु
	1 जोड़ी या अधिक	एक	कोई नहीं	रिपोर्ट नही किया	ट्रैक्टर	पावर टिलर	
आन्ध्रप्रदेश	16.7	3.8	79.4	0.1	0.39	0.01	79.0
बिहार	22.9	14.1	62.8	0.2	0.38	0.16	62.3
गुजरात	16.7	11.0	72.2	0.1	1.56	-	70.6
हरियाणा	9.5	11.6	78.7	0.1	7.2	5.9	65.6
कर्नाटक	25.3	4.5	70.0	0.2	0.77	0.17	69.1
केरल	2.8	4.0	93.1	0.1	0.01	0.05	93.0
मध्यप्रदेश	44.3	10.9	44.6	0.1	1.36	0.22	43.0
महाराष्ट्र	20.2	7.2	72.5	0.1	0.54	0.003	72.0
उड़ीसा	31.9	7.7	60.3	0	0.04	0.02	60.2
पंजाब	8.2	8.3	83.4	0	11.2	6.41	65.8
राजस्थान	20.0	12.2	67.6	1	2.49	0.26	64.9
तमिलनाडु	8.8	3.3	87.3	5	0.30	0.08	86.9
उत्तर प्रदेश	22.6	9.8	67.5	1	1.95	0.53	65.0
पश्चिम बंगाल	19.0	5.5	75.2	4	0.19	0.44	74.6
अखिल भारत	21.4	8.1	70.2	2	1.17	0.44	68.59

स्रोत : (1) भारवाही पशुओं के लिए NSS 50 वां दौर, 1993-94, रिपोर्ट संख्या 424
(2) ट्रैक्टरों व पावर टिलर के लिए NSS 48 वां दौर, 1991-92, रिपोर्ट संख्या 408

अधिक उसे अपनी श्रम शक्ति को बेचने के लिये बाध्य होना पड़ता है और उसके जीवन निर्वाह के साधनों का वह हिस्सा बढ़ता ही जाता है जिसे उसे बाजार से अवश्य हासिल करना होता है।" (लेनिन, Development of Capitalism in Russia, Collected Works, Vol. 3, पृष्ठ 41-42, अनुवाद हमारा है)

इस प्रकार यह बिल्कुल स्पष्ट है कि किसानों के विभेदीकरण की प्रक्रिया (process of differentiation of peasantry) बाजार के लिए उत्पादन के विस्तार और मानव श्रम शक्ति को भी माल में परिवर्तित करने के संदर्भ में, संक्षेप में पूंजीवाद के विकास के संदर्भ में, बहुत महत्वपूर्ण है। यदि हम भारत में पूंजीवाद के विकास (विशेष रूप से कृषि में पूंजीवाद का विकास की प्रक्रिया और उसके स्तर को समझना चाहते है तो यह आश्यक है कि पहले तो हम पूंजीवाद के विकास में इस प्रक्रिया के महत्व को सैद्धान्तिक धरातल पर आत्मासात करें और फिर अपने देश के आर्थिक जगत पर केन्द्रित करते हुए यह जांच पड़ताल करें कि हमारे देश में किसान समुदाय के विभेदीकरण (differentiation of peasantry) की प्रक्रिया मौजूद है या नहीं, इसका वर्तमान स्तर क्या है और इसके विकास की गति व दिशा क्या है। अपने इस लेख में हम इसकी जांच करने की यथा-संभव यथा-शक्ति कोशिश करेंगे।

किसान समुदाय के विभेदीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप कामगार आबादी का एक बड़ा हिस्सा कृषि क्षेत्र के ही बाहर हो जाता है और वह शहर को पलायन करने को मजबूर हो जाता है। इसी प्रकार, विभेदीकरण की प्रक्रिया के कारण ऊपर पहुंच गये तबके का एक हिस्सा शहर जाकर शहरी बुर्जुआ वर्ग का हिस्सा बन जाता है। लेकिन इन दोनों पर बातें करने के पहले हम इस प्रश्न को लेंगे कि वर्तमान अवस्था में ग्रामीण इलाकों में कृषि क्षेत्र में विभेदीकरण की क्या स्थिति है। सारणी 3.1 में प्रस्तुत प्रचालित भू-जोतों (operational landholdings) की श्रेणियों के आधार पर भारत के ग्रामीण इलाकों में एक अत्यन्त विभेदीकृत किसान समुदाय (differentiated peasantry) की तस्वीर नजर आती है। मोटा -मोटी हम कह सकते हैं कि 0.5 हेक्टेयर (1.25 एकड़) से कम खेती करने वाला परिवार खेती से अपनी जरूरतों को पूरा नहीं कर सकता और उसे आमदनी के दूसरे स्रोत तलाशने ही होंगे (बशर्ते वह इतने छोटे खेत पर सब्जी पैदा करने, मुर्गीपालन, डेयरी जैसे शुद्धतः बाजार के लिये उत्पादन करने वाले धन्धे में न लगा हो)। और ऐसे परिवारों की संख्या कुल ग्रामीण परिवारों में 55.0% तक पहुंचती है। भारत के ग्रामीण इलाकों में पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण लक्षणों -सामाजिक श्रम विभाजन व किसान समुदाय के विभेदीकरण-ने ग्रामीण इलाकों की करीब 55% आबादी को मुख्य रूप से किसान नहीं बने रहते दिया है। इसी बात को पुष्ट करती है सारणी 3.2। इस सारणी से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में 68.59% परिवारों के पास खेतों की जुताई के लिये आवश्यक संसाधन नहीं है यानी न तो कोई भारवाही पशु (draught animal) जैसी बैल, भैसां ही है और न ही ट्रैक्टर या पावर-टिलर जैसी आधुनिक जुताई करने वाली मशीनें। इसमें भी आंध्र प्रदेश (79.0%), केरल (93.0%), महाराष्ट्र (72.0%), तामिलनाडु (86.9%) व पश्चिम बंगाल (74.5%) जैसी राज्यों के नाम विशेष उल्लेखनीय है। यदि मात्र एक बैल या भैंसा रखने वाले परिवारों को भी इसमें जोड़ दें (क्योंकि हल चलाने के लिये बैल की जोड़ी चाहिए होती है) तो यह स्थिति और स्पष्ट हो जाती है कि शुद्धतः किसानी पर निर्भर परिवारों का प्रतिशत भारत के ग्रामीण इलाकों में कितना कम हो चुका है। National Sample Survey का अनाज उपभोग से सम्बधित सर्वेक्षण भी यही पुष्टि करता है कि भारत के गांवों में एक समांग किसान समुदाय

(homogeneous peasantry) की जगह विभेदीकृत किसान समुदाय (differentiated peasantry) मौजूद है जिसके एक छोर पर कृषि मजदूरों व गरीब किसानों की विशाल आबादी है जो अपनी आवश्यकता भर भी फसल उत्पादन नहीं कर पाती और अपनी श्रम शक्ति बेचने को मजबूर है तो दूसरी तरफ धनी किसान हैं जो अपनी जरूरत से ज्यादा उत्पादन करते है और उत्पादन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बाजार में बेचते हैं ।

सारणी 1.2 से यह पता चलता है कि केवल चावल न बोने वाले परिवार ही ऐसे नहीं हैं जो चावल के उपभोग के लिए बाहरी उत्पाद पर निर्भर हैं । यदि हम कालम (9) पर नजर डालें तो पाएंगे कि चावल बोने वाले सभी (अखिल भारतीय स्तर पर 35.9%) बाहरी उत्पाद से आता है । इसमें भी आन्ध्र-प्रदेश मुख्य रूपसे उल्लेखनीय है जिसके ग्रामीण इलाकों में चावल की खेती करने वाले परिवारों के कुल चावल उपभोग का 53.8% बाहरी उत्पाद से आता है, घरेलू उत्पाद से नहीं । (इसमें इस बात की भी संभावना हो सकती है कि अपने खेत में बाजार के लिये अन्य फसलें भी बोने वाले, एक छोटे हिस्से पर ही चावल बोते हों और अपनी आवश्यकता का एक हिस्सा चावल वे बाजार से खरीदते हों । यह फिर भी एक गौण कारण है और इसका प्रभाव भी कम ही है ।) केरल के लिये यही आंकड़ा 47.8%, उड़ीसा के लिये 43.2%, तमिलनाडु के लिये 39.4% व पश्चिम बंगाल के लिये 37.4% है । बहुत स्पष्ट है कि चावल बोने वाले परिवारों की भी कुल चावल की खपत में बाहरी उत्पाद से चावल की खपत महत्वपूर्ण हिस्सा है । गेहूं के उपभोग के बारे में विवरण देने वाली सारणी 1.3 में भी यह बात स्पष्ट दिखाई दे रही है । अखिल भारतीय स्तर पर गेहूं बोने वाले परिवारों के कुल गेहूं उपभोग का 31.38% बाहरी उत्पाद से आता है । गुजरात के लिय यह 65.27% है जबकि उन्य राज्यों के लिये यह 26% से 36% के बीच है ।

इस यथार्थ के निहितार्थ कितने महत्वपूर्ण हैं, इसे समझने के लिए इसे 'किसान समुदाय के विभेदीकरण' (differentiation of peasantry) के संदर्भ में, उससे जोड़कर देखा जा सकता है। दरअसल, ऊपर हमने जिन आंकड़ों पर चर्चा की है, वे हर राज्य के लिए और अखिल भारतीय स्तर पर भी औसत आंकड़े हैं। चावल बोने वाले ग्रामीण किसान परिवारों द्वारा कुल चावल उपभोग में से एक हिस्सा (और वह भी महत्वपूर्ण हिस्सा) घरेलू उत्पाद से न आकर बाहरी उत्पाद से आता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी चावल बोने वाले परिवार अपने चावल उपभोग का एक हिस्सा बाजार से जुटाते हैं। दरअसल, भारत के चावल उत्पादक (चावल की खेती करने वाले) एक समांग किसान समुदाय (homogeneous peasantry) का हिस्सा नहीं हैं। भारत में सम व समांग किसानों के वर्ग की जगह गरीब किसान, मध्यम किसान व धनी किसानों के अलग-अलग वर्ग मौजूद हैं। सीमांत किसानों व लघु किसानों के वर्ग ही किसानों के वे हिस्से हैं जो जिस अनाज की फसल की खेती करते हैं, उसी का उत्पादन भी इस स्तर पर नही कर पाते कि घरेलू उत्पाद से अपनी उपभोग की आवश्यकता पूरी कर सकें और इन्हें उसी अनाज के उपभोग का, जिसकी ये स्वयं खेती करते हैं, एक हिस्सा बाहरी उत्पाद से जुटाना पड़ता है । दरअसल यह कृषि-मजदूरों व गरीब किसानों के वर्ग हैं, जिनकी गणना किसानों में करने की बजाय सर्वहारा वर्ग व अर्द्ध-सर्वहारा वर्ग की श्रेणी में ही करना ज्यादा उचित होगा । (इस पर विस्तार से चर्चा हम आगे करेंगे ।) इन वर्गों के ठीक विपरीत धनी किसानों के वर्ग में शामिल परिवार न केवल अपनी जरूरत भर के लिए वह अनाज पैदा कर रहे हैं, बल्कि अपने परिवार की जरूरत से बेशी (surplus) पैदा कर लेते हैं । धनी किसानों का यह वर्ग बेशी उत्पाद (surplus product) को बाजार में बेचता है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि "स्वयं उपभोग के लिए उत्पादन" ही आज भारत में अनाज उत्पादन के क्षेत्र में मूल प्रेरक व चालक शक्ति नहीं है। एक तरफ जहाँ

कृषि मजदूरों व गरीब किसानों के वर्गों के परिवार चाहकर भी अपनी आवश्यकता भर अनाज अपनी खेती पर पैदा होने वाले उत्पाद से पूरी नहीं कर सकते (क्योंकि उनके किये आवश्यक उत्पादन के साधनों - भूमि, खेती के लिये आवश्यक पशु व यंत्र, उन्नत बीज, खादें वगैरह-वगैरह - का अभाव है) और उन्हें अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए बाहरी उत्पाद पर निर्भर रहना पड़ता है।जाहिर है यह बाहरी उत्पाद उन्हें बाजार में हासिल करना होता है और बाजार से यह उत्पाद हासिल करने के लिए विनिमय के रूप में इन्हें अपनी श्रम-शक्ति को बेचना होगा (क्योंकि इनके पास बेचने के लिए अन्य माल नहीं है)। दूसरी तरफ धनी किसान फसल बोने के पहले ही न केवल जानता है कि उसके खेतों पर खेती के फलस्वरूप उसकी आवश्यकता से ज्यादा (surplus) अनाज पैदा होगा जिसे वह बाजार में बेचेगा, बल्कि इससे आगे जाकर वह अपनी आवश्यकता से ऊपर पैदा होने वाले अनाज के इस हिस्से को बढ़ाने के हर संभव प्रयास करता है (हालांकि मध्यम किसान भी अपने उत्पाद का एक हिस्सा बेचते हैं लेकिन यह मुख्यतः अपने उपभोग के सामान, बाजार से खरीदने के लिए होता है)। इसलिए बाजार के लिए अपनी क्षमताभर अधिक से अधिक उत्पादन करना धनी किसानों के वर्ग के परिवारों का उद्देश्य होता है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता है। हमने भारत के ग्रामीण इलाकों के लिए ही जो सारिणी 1.2 तैयार की है, उसमें नजर आने वाले "बाहरी उत्पाद से उपभोग" वाले अनाज के मुख्य अंश का उत्पादन भी यही धनी किसानों का वर्ग अपने कृषि उद्यम पर करता है । भारत के ग्रामीण इलाकों में कुल अनाज उपभोग में बाहरी उत्पाद का हिस्सा 50% से अधिक है और अनाज के इस भारी हिस्से की पूर्ति धनी किसानों के खेतों पर उसकी आवश्यकता से अधिक पैदा होने वाले अनाज से ही होती है। जाहिर है कि धनी किसान वर्ग के खेतों पर जितना अनाज पैदा होता है (सभी को मिलाकर), उसका न केवल 50% से ज्यादा बड़ा हिस्सा यह वर्ग बाजार में बेचने के उद्देश्य से पैदा करता है और वस्तुतः बेचता भी है।

किसान समुदाय के विभेदीकरण (differentiation of peasantry) की प्रक्रिया के फलस्वरूप एक तरफ धनी किसानों का वर्ग उभर कर आ रहा है जो अपने उत्पाद का बड़ा हिस्सा बाजार में बेचता है, जिसके पास खेती योग्य जमीन की बड़ी भू-जोतें हैं, जिसके पास खेती के आधुनिक संसाधनों - खादों, आधुनिक मशीनों, बिजली की आपूर्ति, वगैरह - का अत्यधिक बड़ा हिस्सा है, जो खेती में पूंजी निवेश कर रहे हैं और कृषि श्रमिकों की श्रम-शक्ति का शोषण कर रहे हैं तो दूसरी तरफ गरीब किसानों की बहुलांश आबादी है जो कंगाली व बदहाली का जीवन गुजार रही है, जो अपने खेत पर कृषि से परिवार के खाने की भी जरूरत पूरी नहीं कर पाती है, जिसके पास खेती के लिये आवश्यक उन्नत संसाधनों की सर्वथा कमी है, जो अपनी जरूरत पूरी करने के लिए अपनी श्रम-शक्ति बेचने को मजबूर हो रहा है। पहला तबका अस्तित्व में आ रहे ग्रामीण बुर्जुआ का है और दूसरा ग्रामीण सर्वहारा का।

IV

उज़रती श्रमिकों की बढ़ती आबादी

अभी तक हम किसान समुदाय के विभेदीकरण (differentiation of peasantry) के तहत एक छोर पर सीमांत व गरीब किसानों के वर्ग व दूसरे छोर पर धनी किसानों के वर्ग की मौजूदगी पर चर्चा कर रहे थे । अब इसी प्रक्रिया पर चर्चा को आगे बढ़ाते हुए हम इस प्रक्रिया के उस पक्ष पर बात करेंगे, जिसके तहत इसने माल-उत्पादन (commodity

सारणी 4.1 : कृषि क्षेत्र में कृषि मजदूरों का बढ़ता हिस्सा (% में)

वर्ष	1951	1961	1971	1981	1991
कृषक (कृषि कर्मकरों में%हिस्सा)	71.7	76.0	62.3	61.5	59.2
कृषि मजदूर (कृषि कर्मकरों में%हिस्सा)	28.3	24.0	37.7	38.5	40.8

स्रोत : जनगणना

production) से आगे बढ़कर पूंजीवादी उत्पादन (capitalist production) को जन्म दिया है।

किसानों के विभेदीकरण की प्रक्रिया (differentiation of peasantry) ने न केवल कृषि क्षेत्र बल्कि गैर-कृषि क्षेत्र में भारी पैमाने पर अपनी श्रम शक्ति बेचने वाले उजरती श्रमिकों को जन्म देकर पूंजीवाद को स्थापित किया है। लेनिन इस बात को बताते है कि पूंजीवाद की प्रमुख लाक्षणिकता उजरती श्रम का इस्तेमाल (employment of wage labour) है। और इसीलिए वे "पारिवारिक खेती" (family farming) का गुणगान करने वाले बुर्जुआ बुद्धिजीवियों को लताड़ पिलाते हुए याद दिलाते हैं:

> "पूंजीवाद का मुख्य लक्षण क्या है? उजरती श्रम (wage labour) का इस्तेमाल।" (लेनिन, Bourgeois Gentlemen on "Family" Farming, Collected Works, पृष्ठ-364, अनुवाद हमारा है)

एक अन्य स्थान पर लेनिन लिखते हैं:

> "किराये का श्रम (hired labour) कृषि में पूंजीवाद का मुख्य लक्षण है।" (लेनिन, New data on the Development of Capitalism in Agriculture, Collected Works, Vol. 22. पृष्ठ 101, अनुवाद हमारा है)

हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि पूंजीवादी-उत्पादन, माल-उत्पादन के विकास की ही वह उच्चतर-अवस्था है जहां मानव श्रम-शक्ति भी माल में परिवर्तित हो जाती है और अन्य मालों की तरह श्रम-शक्ति नामक माल की भी बाजार में खरीद फरोख्त होने लगती है।

किसान समुदाय के विभेदीकरण (differentiation of peasantry) की प्रक्रिया केवल कृषि-क्षेत्र में ही नहीं बल्कि गैर - कृषि क्षेत्र के उजरती श्रमिकों (hired labourers) की आबादी को जन्म देती है। इस प्रक्रिया के कारण किसान समुदाय का बहुसंख्यक हिस्सा धीरे-धीरे क्रमशः कंगाल व तबाह होता जाता है और एक उत्पादक के रूप उसका टिक पाना कठिन से कठिनतर होता जाता है और एक समय आता है जब वह उत्पादन के साधनों से हाथ धो बैठता है और जीवन-निर्वाह हेतु बेचने के लिए उसके पास अपनी श्रम-शक्ति के अलावा और कोई माल नहीं होता। इस प्रकार उजरती श्रमिकों का वर्ग अस्तित्व में आता है। चूंकि किसी भी देश में कृषि योग्य भूमि सीमित होती है और कृषि का विकास व उसमें आधुनिक तकनीक के प्रवेश के कारण कृषि में काम पाने की संभावना उत्तरोत्तर कम होती जाती है। यानी कृषि क्षेत्र में मानव श्रम-शक्ति नामक माल की घटती मांग धीरे-धीरे श्रम शक्ति के मालिकों यानी उजरती श्रमिकों को बाध्य करती है कि वे गैर-कृषि क्षेत्र की ओर रूख करें। इस प्रकार, किसान समुदाय के विभेदीकरण की प्रक्रिया कृषि और गैर-कृषि दोनों क्षेत्रों के लिए उजरती श्रम को जन्म देती है।

आइये! भारत में उजरती श्रमिकों के बढ़ते जा रहे हिस्से पर नजर डालें। चूंकि

शहरों के बारे में और गैर-कृषि क्षेत्र में पूंजीवाद के बारे में विवाद नहीं है। इसीलिए पहले कृषि क्षेत्र को लेते हैं। सारणी 4.1 से यह स्पष्ट झलकता है कि 1961 के बाद से क्षेत्र में कार्यरत कर्मकरों (workers) में कृषि मजदूरों का हिस्सा बढ़ता जा रहा है किसानों का हिस्सा कम होता जा रहा है। (जनगणना में मुख्य कर्मकरों का ही वितरण दिया जाता है।) 1951-61 के दौर मे कृषि में कृषि मजदूरों का हिस्सा कम हुआ था और किसानों का हिस्सा बढ़ा था (यह संभवतः तत्कालीन भूमि सुधारों का परिणाम था), लेकिन उसके बाद से कृषि श्रमिकों हिस्सा लगातार बढ़ता गया है।

सारणी 4.2 : ग्रामीण भारत में मजदूर, राज्यवार विवरण, 1994

राज्य	कुल बालिग कमाने वालों में बालिग मजदूरी कमाने वालों का %
हरियाणा	24.9
पंजाब	19.9
बिहार	32.6
उत्तर प्रदेश	22.2
मध्य प्रदेश	52.0
उड़ीसा	40.3
राजस्थान	27.3
पश्चिम बंगाल	29.6
गुजरात	44.6
महाराष्ट्र	50.5
आन्ध्र प्रदेश	54.1
कर्नाटक	42.5
केरल	41.0
तमिलनाडु	51.8
अखिल भारत	37.6

स्रोत : India Human Development Report, NCAER, 1999

भारत के ग्रामीण इलाकों में (कृषि व गैर-कृषि मिलाकर) हम यह पाते हैं कि 1994 आते आते कुल बालिग कमाने वालों (adult earners) में बालिग मजदूरी कमाने वालों (adults wage earners) का हिस्सा 37.6% तक पहुंच गया था (देखें सारणी 4.2)। इस सारणी से यह भी पता चलता है कि मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, व तमिलनाडु जैसे राज्यों में यह प्रतिशत 50 को पार कर चुका है।

किसानों के बीच विभेदीकरण न केवल एक स्तर पर मौजूद है बल्कि वह बढ़ रहा है। ग्रामीण इलाकों में लगभग भूमिहीन परिवारों की आबादी का हिस्सा बढ़ता गया है। (देखें सारणी 4.2b)

किसान समुदाय के विभेदीकरण की बढ़ती प्रक्रिया ने न केवल कृषि क्षेत्र, बल्कि गैर कृषि क्षेत्र के लिए भी बड़े पैमाने पर मजदूरों व वेतन भोगी कर्मचारियों की आबादी को जन्म दिया है। गैर-कृषि क्षेत्र की आबादी के बारे में जानकारी अध्याय II व VI में दी गई है।

किसान समुदाय के विभेदीकरण व गैर कृषि क्षेत्र के कर्मकरों की आबादी के बारे में विचार करते वक्त एक अजीबोगरीब परिघटना दिखाई देती है जिस पर ध्यान देने की

सारणी 4.2b: ग्रामीण भूमिहीन परिवार (कुल ग्रामीण परिवारों के प्रतिशत में)

वर्ष	भूमिहीन (0.002 हैक्टेयर से कम)	लगभग भूमिहीन (0.002-0.2 हैक्टेयर)	कुल
1960-61	11.68	26.22	37.90
1970-71	09.64	27.78	37.42
1980-81	11.33	28.60	39.93
1991-92	11.25	31.15	42.40

(Source : NSS 17th, 26th, 37th, & 48th rounds as quoted in EPW. Dec.25.1999)

सारणी 4.3 ग्रामीण रोजगार के संघटन (composition) में परिवर्तन (1981-91)

राज्य	कृषकों व ग्रामीण मुख्य कर्मकरों (RMWs) के अनुपात में % परिवर्तन	कृषि में खोये गए रोजगार के % के रूप में ग्रामीण गैर कृषि क्षेत्र में नए रोजगार	कृषि मजदूरों (agricultural laboures) व ग्रामीण मुख्य कर्मकरों (RMWs) की संख्या के अनुपात में परिवर्तन(%)
आन्ध्रप्रदेश	-6.0	3	+5.8
तमिलनाडु	-6.0	18	+4.9
उत्तर प्रदेश	-5.6	40	+3.3
राजस्थान	-2.1	-51	+3.2
पंजाब	-2.7	19	+2.2
उड़ीसा	-2.4	72	+0.7
गुजरात	-4.7	82	+0.8
अखिल भारत	-3.4	33	+2.3

(स्रोत : जनगणना 'The forgotten Sector' में महाजन व फिशर द्वारा उद्धृत)

जरूरत है। भारत को अर्द्ध सामंती मानने वाले साथी अपने तर्कों को साबित करने के लिए जिन राज्यों (मसलन आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश वगैरह) का जिक्र करते हैं, ऐसे कृषि क्षेत्र में पिछड़े राज्यों में मजदूरी करने वालों की प्रतिशत तादात उन राज्यों से कहीं ज्यादा है, जिन राज्यों में (मसलन पंजाब व हरियाणा) ये साथी भी कृषि में पूंजीवादी विकास को स्वीकार करने को मजबूर हैं (अलबत्ता वे तमाम किन्तु-परन्तु के साथ ऐसा करते हैं)। इसकी क्या व्याख्या हो सकती है? हमारी नजर में, सम्पूर्ण भारत में ही पूंजीवादी विकास के कारण ग्रामीण कर्मकरों (workers) में कृषकों का प्रतिशत कम होता जा रहा है। कृषकों के रूप में बेदखल आबादी कहां जाए? उसकी बेदखली की दर के सापेक्ष शहरी क्षेत्र में रोजगार मे विकास बहुत कम हो रहा है। नतीजतन, कृषक के रूप में अस्तित्व बनाये रखने में असफल कामगार ग्रामीण क्षेत्रों में ही बने रहने को मजबूर है। देश के जिन राज्यों के ग्रामीण इलाकों में गैर-कृषि क्षेत्र का विकास सापेक्षतया तेजी के साथ हो रहा है, वहां तो कृषक के रूप में अस्तित्व बनाये रखने में असफल आबादी का एक हिस्सा गैर-कृषि क्षेत्र में काम करने लग रहा है (या तो गैर-कृषि में स्वरोजगार के रूप में या फिर गैर-कृषि क्षेत्र में उजरती श्रमिक (wage labourer) के रूप में।) लेकिन जिन इलाकों में गैर कृषि क्षेत्र में सापेक्षतया विकास नहीं हो रहा है, वहां कृषक के रूप में बेदखल होने वाले कृषि में ही कृषि श्रमिक के रूप में तब्दील हो जा रहे हैं। आन्ध्र प्रदेश में तो, जहां गैर-कृषि क्षेत्र का विकास सापेक्षतया बहुत पिछड़ा हुआ है, कुल कर्मकरों (workers) का 50 फीसदी कृषि-श्रमिक (agricultural labour) में तब्दील हो चुका है (The Forgotten Sector, Vijay Mahajan & Thomas Fisher)। इस बारे में 1981 व 1991 के आंकड़ों पर आधारित सारणी 4.3 बहुत ज्ञानवर्धक जानकारी देती है। इस सारणी में यह बात बिलकुल स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ रही है कि राज्यों में (और अखिल भारतीय स्तर पर) कुल ग्रामीण मुख्य कर्मकरों (rural main workers) में कृषकों का प्रतिशत हिस्सा घट रहा है और कृषक के रूप में विस्थापित हो रहे ग्रामीण मुख्य कर्मकरों (RMWs) का जो एक हिस्सा ग्रामीण गैर-कृषि क्षेत्र में खपा लिया जा रहा है, उसके अलावा शेष हिस्सा ग्रामीण कृषि-मजदूर बनने को मजबूर हो जा

रहा है। सारणी से स्पष्ट जाहिर है कि आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु व उत्तर प्रदेश में 1981-91 के दौरान कृषक के रूप में विस्थापित होने वाले ग्रामीण मुख्य कर्मकरों (RMWs) का प्रतिशत सापेक्षतया ऊंचा था, लेकिन गुजरात ने इनमें से 82% व उत्तर प्रदेश ने इसमें से 40% को गैर-कृषि में खपा लिया जबकि आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु मात्र क्रमशः 3% व 18% को गैर-कृषि क्षेत्र में खपा पाए। नतीजतन 1981-91 के दौरान आन्ध्र प्रदेश व तमिलनाडु में कुल मुख्य कर्मकरों में कृषि मजदूरों का प्रतिशत हिस्सा सापेक्षतया तेजी के साथ बढ़ा है।

V

कृषि में पूंजीवादी विकास - अपनी विशिष्टताओं के साथ

अपने लेख के पिछली किस्त में (पिछले अंक में) भी हम इस बात को कई बार रेखांकित कर चुके हैं कि कृषि में पूंजीवाद का विकास उसी तरह से नहीं होता, जैसे कि उद्योगों में। किसी ऐसे देश, जो कृषि क्रान्ति से गुजरे बगैर पूंजीवादी समाज में तब्दील हो गया हो (और ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है), में पुराने जमाने के अवशेषों से पूर्णतः मुक्त, शुद्ध पूंजीवादी रिश्तों की तलाश (और वह भी पूंजीवाद के विकास की शुरूआती मंजिलों में ही) दरअसल सैद्धान्तिक धरातल पर ही गलत सोच का शिकार दिखाई देती है। दुनिया के प्रमुख पूंजीवादी देशों में कृषि में पूंजीवाद के विकास का इतिहास हमारी उस समझ की तसदीक ही करता है। ऐतिहासिक प्रश्न को हम अन्यत्र लेंगे, अभी पहले कृषि में पूंजीवाद के विकास की सैद्धान्तिक समझ पर बात को आगे बढ़ाते हैं।

लेनिन लिखते हैं:

> "वाणिज्यिक कृषि के अस्तित्व में आने की प्रक्रिया बिल्कुल वैसे ही नहीं चलती जैसी कि यह फैक्ट्री उद्योग में दिखाई देती है: उद्योग में यह साधारण व प्रत्यक्ष रूप ग्रहण करती है जबकि कृषि के मामले में हम कुछ अलग वाणिज्यिक और गैर वाणिज्यिक कृषि के मिश्रण का व्यापक प्रचलन देखते हैं। मुख्य रूप से, किसी दिये गए इलाके में एक निश्चित उत्पाद को बाजार में ले जाया जाता है। एक तरफ, जमींदार (landlord's) की भूमि, और विशेषकर, किसानों की भूमि पर उत्पादन माल-उत्पादन है जबकि दूसरी तरफ, यह अपना उपभोक्ता चरित्र भी बनाये रखती है।" (लेनिन, Marxist Views on the Agrarian Question, Collected Works, पृष्ठ341, अनुवाद हमारा है।)

जिस प्रकार कृषि क्षेत्र में शुद्ध पूंजीवाद के दर्शन दुर्लभ होते हैं उसी प्रकार कृषि में पूंजीवाद के विकास के फलस्वरूप "मुक्त" सर्वहारा भी उस तरह नजर नहीं आता जैसा कि औद्योगिक क्षेत्र में नजर आता है। कृषि में "मुक्त" सर्वहारा की व्यापक स्तर पर मौजूदगी को ही पूंजीवाद का लक्षण मानने वालों से तंग आकर ही लेनिन को यह टिप्पणी करनी पड़ी थी :

> "हमारे साहित्य में बहुधा इस सैद्धान्तिक तर्क की बहुत रूढ़िवादी समझ मौजूद रहती है कि पूंजीवाद को मुक्त, भूमिहीन श्रमिक चाहिए होते हैं। मुख्य प्रवृत्ति की ओर संकेत करने के लिए यह बात बिलकुल ठीक है, लेकिन पूंजीवाद कृषि में विशेषतः धीमी चाल से व अत्यंत विविध रूपों में प्रवेश करता है। ग्रामीण मजदूरों को भूमि का आवंटन अधिकतर ग्रामीण स्वामियों (employers) के स्वयं के हित में होता है और यही कारण है कि **आवंटित भूमि रखने वाला ग्रामीण श्रमिक एक ऐसी किस्म है जो सभी पूंजीवादी देशों में पाई जाती है।**" (लेनिन, Development of

Capitalism in Russia, Collected Works, Vol.3, पृष्ठ 178, अनुवाद व जोर हमारा)

इसी बर्बादी के कगार पर, भूमि के छोटे से एक टुकड़े पर बहुत तुच्छ स्तर की खेती करने वाले ग्रामीण सर्वहारा के बारे में लेनिन पुनः इस प्रकार जिक्र करते हैं:

"...एक अन्य किस्म आवंटित-भूमि रखने वाले (allotment holding) वर्ग की, ग्रामीण सर्वहारा की है। गरीब किसानों के साथ ही पूर्णतः भूमिहीन भी इसमें शामिल है; परन्तु रूसी ग्रामीण सर्वहारा के सबसे अधिक ठेठ प्रतिनिधि हैं आवंटित भूमि रखने वाले (allotment holding) कृषि-श्रमिक (farm labourers), दैनिक-श्रमिक (day-labour), अकुशल श्रमिक, इमारती श्रमिक (building-workers) या अन्य आवंटित भूमि रखने वाले श्रमिक। भूमि के एक टुकड़े पर नगण्य खेती, चरम कंगाली की स्थिति वाला फार्म.... श्रम शक्ति के विक्रय के बिना अस्तित्व बनाये रखने में असमर्थता....., अत्यन्त निम्न जीवन-स्तर (संभवतः बिना भूमि आवंटन वाले श्रमिक से भी नीचे का जीवन स्तर) - इस किस्म की यही चारित्रिक पहचान है।" (लेनिन, Development of Capitalism in Russia, Collected Works, Vol.-3, पृष्ठ 177, अनुवाद हमारा है)

"और छोटे किसानों के बारे में क्या [कहा जाए-अनुवादक]? वे स्वयं को किराये पर उठाते (hire-out) हैं। वे भूमि का टुकड़ा रखने वाले उजरती श्रमिक (wage-workers) है। (लेनिन, The Peasantry and The Working Class, Collected Works, Vol.19, पृष्ठ 207, अनुवाद हमारा है)

जाहिर है स्वयं की श्रम-शक्ति बेचने को मजबूर गरीब किसानों की उजरती श्रमिकों की श्रेणी में, ग्रामीण सर्वहारा की श्रेणी में, गणना करना लेनिन बेहतर समझते हैं। यहां प्रश्न की महत्ता सिर्फ यही तक नहीं है कि श्रम शक्ति बेचने को मजबूर, भूमि के छोटे से टुकड़े पर लगभग तुच्छ सी खेती करने वालों को किसानों (भले ही गरीब किसान कहते हुए) की श्रेणी में गिना जाए अथवा ग्रामीण सर्वहारा की श्रेणी में। सवाल इससे भी ज्यादा गंभीर है क्योंकि यह क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के इस वर्ग के प्रति नजरिये में और इस प्रकार भावी क्रान्ति के प्रति क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के कार्यभार के प्रति नजरिये को तय करता है और अंततः बात क्रान्ति के समग्र कार्यभारों व क्रान्ति की मंजिल तक पहुंच जाती है (लेकिन इस पर चर्चा हम अन्यत्र करेंगे)। अभी तो केवल इतना ही कि हमारे शिक्षक लेनिन छोटे से भूमि के टुकड़े पर तुच्छ पैमाने की खेती करने वालों, लेकिन जीवन निर्वाह के लिए बाजार में अपनी श्रम-शक्ति बेचने को मजबूर कर्मकरों (workers) को गरीब किसान के बजाय ग्रामीण सर्वहारा कहना राजनीतिक रूप से कहीं अधिक उचित समझते हैं और उनके खेतों को सर्वहारा फार्म (proletarian farms) की संज्ञा देते हैं। वे कहते हैं:

"सर्वहारा फार्म (proletarian farms) से हमारा अर्थ उन बहुत छोटे (tiny) भूमि के टुकड़ों से है जोकि उजरती-श्रमिकों को अतिरिक्त आमदनी (supplementary earnings) उपलब्ध कराती हैं।" (लेनिन, Child Labour in Peasant Farming, Collected Workes, Vol-10, पृष्ठ 210 अनुवाद हमारा है।)

"सर्वहारा फार्मों पर जमीन के इतने तुच्छ से टुकड़े (insignificant plot) पर खेती की जाती है कि, सच पूछिये तो, इन्हें गंभीरतापूर्वक "फार्म" कहा ही नहीं जा सकता है। यहां खेती गौण आजीविका है; प्रधान आजीविका कृषि में और उद्योग में उजरती श्रम है।" (लेनिन, Child Labour in Peasant Farming, Collected Works, Vol-19, पृष्ठ 211, अनुवाद हमारा है।)

काश ! लेनिन की इस विश्लेषण प्रणाली को, उनके द्वारा प्रदत्त इस समझदारी को

हमारे आन्दोलन में भी आत्मसात किया गया होता तो भारतीय क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन आज एक अलग ही जमीन पर होता। बहरहाल अपनी बात को हम आगे बढ़ाते हैं।

कृषि में पूंजीवाद के विकास के बारे में लेनिन की अवधारणा किसी रूढ़िवादी, सांचे में ढली हुई सोच पर आधारित न होकर विज्ञान पर आधारित है। इसीलिए वे एक वैज्ञानिक की तरह कृषि में पूंजीवाद के विकास का विश्लेषण करते हैं और कृषि में पूंजीवाद के विकास की विभिन्नि संभावनाओं को पहले से ही बहिष्कृत न करके वास्तविक जीवन की सच्चाई को स्वीकार करके आगे बढ़ते हैं। इसीलिए वे इस तथ्य को अपने संज्ञान में लेना नहीं भूलते कि जमींदारों (landlords) द्वारा खेती में पूंजी-निवेश किया जा रहा है और वे उजरती श्रम (hired labour) का खेती में उपयोग कर रहे हैं। वे जमींदार वर्ग द्वारा भी स्वयं को पूंजीपति में तब्दील कर लेने की संभावना को ही नकारने की बजाय इस वास्तविकता को संज्ञान में लेते हैं और इस प्रकार के परिवर्तन को नजरअंदाज करने वाले नरोदनिकों की खबर लेते हैं। नरोदनिक दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए लेनिन लिखते हैं:

"सुधारों के बाद के काल के समग्र इतिहास की चारित्रिक विशेषता पूंजी का हमला (invasion) है। जमींदार (landlords) किराये के श्रम (hired labour) का इस्तेमाल करने की ओर बढ़े (धीरे-धीरे अथवा तीव्र गति से, यह एक अलग विषय है), जो काफी व्यापक स्तर पर फैल गया और यहां तक कि किसानों की आमदनी के मुख्य हिस्से के चरित्र का निर्धारण करने लगा; उन्होंने तकनीकी सुधारों का आरम्भ किया और मशीनों को इस्तेमाल में ले आए।" (लेनिन, The Ecomomic Content of Narodnism, Collected Works, पृष्ठ 465, अनुवाद हमारा है)

कृषि में पूंजीवाद के विकास में जमींदारों द्वारा स्वयं को पूंजीपति में तब्दील कर इस प्रक्रिया को गति देने के बारे में लेनिन की यह टिप्पणी कोई अकेली टिप्पणी नहीं है। वे तो *अमरीकी मार्ग (American Path)* व *प्रशियाई मार्ग (Prussian path)* के रूप में कृषि में पूंजीवादी विकास की दो भिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं को पहली बार विस्तार से चिन्हित करने वाले मार्क्सवादी क्रान्तिकारी थे।

कृषि में पूंजीवाद के विकास के विभिन्न रास्तों की संभावना व कृषि में पूंजीवादी विकास की विशिष्टिताओं के बारे में इस बिलकुल स्पष्ट समझदारी के साथ जब लेनिन कृषि में पूंजीवादी विकास के कारण कृषकों के जीवन में आये बदलावों पर नजर डालते हैं; तो खेती में श्रम-शक्ति को काम पर लगाने या समग्रता में कृषि में पूंजीवाद के विशिष्टताओं को नजरअंदाज करने की बजाय उसे चिन्हित करते हैं:

"...कृषि में लगे *किराये के श्रम (hired labour)* की ठीक-ठीक गणना करना एक अत्यंत कठिन काम है।... चूंकि कृषि में पूरे साल भर स्थिर और लगातार श्रम की आपूर्ति के बजाय केवल एक निश्चित मौसम में ही अतिरिक्त आपूर्ति की आवश्यकता होती है, केवल नियमित रूप से रोजगार में लगे किराये के श्रम (hired labour) का पंजीकरण किसी भी प्रकार से किराये के श्रम (hired labour) के शोषण के स्तर को दिखा नहीं सकेगा, जबकि मौसमी (प्रायः नियत) मजदूरों की संख्या की गणना अत्यन्त कठिन है।" (लेनिन, New Economic Development in Peasant Life, CW, Vol-1, पृष्ठ 67-68, अनुवाद हमारा)

यह है लेनिन की पहुंच! वे कृषि में पूंजीवाद के विकास के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आये मौसमी, दैनिक, अनियतकालीन, आकस्मिक, सभी प्रकार के उजरती श्रम की मौजूदगी को चिन्हित करते हैं, उनकी ठीक-ठीक संख्या की गणना के संदर्भ में व्यवहारिक समस्याओं को स्वीकार करते हैं, लेकिन ऐसे श्रमिकों के अस्तित्व में आने के मूल कारक - कृषि में पूंजीवाद विकास की प्रक्रिया - को नजरअंदाज नहीं करते।

VI

आय के स्रोत के आधार पर परिवारों का वर्गीकरण और भारतीय समाज की एक तस्वीर

किसी भी वर्गीय समाज में किसी परिवार या उसके किसी सदस्य का चरित्र सामान्यतः उस परिवार के आय के स्रोत से तय होता है (हालांकि समाज विज्ञान के अन्य नियमों की भांति इसके भी कुछ अपवाद हो सकते हैं)। इसलिए परिवार की आय के स्रोत के अनुसार परिवारों को श्रेणीबद्ध करने से किसी समाज की बनावट का एक अंदाज लगाया जा सकता है। लेख के इस अंश में इसी आधार पर हम भारतीय समाज का एक जायजा लेंगे। इसके लिए हम MIMAP Survey के अनुमानों को अपना आधार बनाएंगे। सारणी 6.1 में MIMAP सर्वेक्षण के अनुमान दिये गए हैं। इस सारणी में परिवारों को उनके व्यवसायगत श्रेणी में बांटा गया है। इस सर्वेक्षण के परिणाम हमें बता रहे हैं कि किसान परिवार (जिनकी आय का 50% से अधिक खेती से आता है) तो अब ग्रामीण इलाकों में भी अल्पमत में (30.59%) होकर रह गए हैं। यदि शहरी इलाकों को भी शामिल करते हुए समग्र भारतीय समाज की बात करें तो किसान परिवारों की संख्या कुल परिवारों की संख्या का महज 22.55% रहे गयी है। ऐसा नहीं है कि शेष परिवार कृषि कार्य नहीं करते। वे खेती तो करते हैं लेकिन उनकी आय का थोड़ा हिस्सा ही खेती से आता है और किसी परिवार का मुख्य चरित्र, उसकी आय के मुख्य स्रोत से तय होता है। उदाहरण के लिए यह संभव है कि कृषि-मजदूर के रूप में वर्गीकृत परिवारों के पास भी थोड़ी खेती हो लेकिन उन्हें किसान कहना राजनीतिक-अर्थशास्त्र की उथली समझदारी का ही प्रतीक होगा। स्वयं के परिवार के खेत से आमदनी कृषि मजदूर के लिए पूरक आय (subsidary income) का काम करती है, उसकी मुख्य आय तो खेती में अपनी श्रम-शक्ति की बिक्री से, उजरती श्रमिक (wage labour) के रूप में काम करने से होती है। इस फर्क को न समझने और बार-बार किसानों व कृषि मजदूरों को एक साथ रखकर विश्लेषण करने वाले और कृषि में पारिवारिक श्रम (family labour) के प्रभुत्व की बात करने वाले बुर्जुआ विचारकों की लेनिन ने खूब ख़बर ली थी और इसे कृषि में पूंजीवादी शोषण के कारण पैदा हो रही कंगाली व तबाही को छिपाकर एक पूंजीवादी समाज की सजावटी, सुन्दर तस्वीर पेश करने का बुर्जुआ हथकण्डा करार दिया था।

दरअसल कृषि में और ग्रामीण क्षेत्रों में पूंजीवाद के विकास की प्रक्रिया इतनी जटिल और उलझी हुई होती है कि वह शुद्ध पूंजीपति और शुद्ध मजदूर के अलावा भी मिश्रित ढंग के कर्मकरों (workers) को पैदा करती है जो इतने विविध स्रोतों से आय हासिल करते हैं कि इनका वर्गीकरण बहुत कठिन होता है। फिर भी सारणी 6.1 व 6.2 के आंकड़े हमें निश्चित रूप से ग्रामीण आर्थिक जीवन की एक झलक देते हैं। पूंजीवादी विकास का यह चरित्र होता है कि वह समग्र समाज के आर्थिक जीवन के कुल योग में से कृषि का हिस्सा कम करता जाता है- कुल उत्पादन में कृषि का हिस्सा, कुल आबादी में कृषि पर निर्भर आबादी, कुल आय में कृषि से आय, कुल श्रम शक्ति में से कृषि में लगी श्रम शक्ति वगैरह।

सारणी 6.1 व 6.2 इस बात की तसदीक करती है और इसके साथ-ही-साथ कृषि में पूंजीवाद विकास की विशिष्टता को भी प्रदर्शित करती है।

पहले सम्पूर्ण भारतीय समाज (ग्रामीण व शहरी दोनों) को लें। देश के कुल परिवारों में से केवल 22.55% मुख्यतः किसान हैं जबकि देश के सभी परिवारों की कुल

आय में कृषि से आय का हिस्सा गिरते-गिरते अब 20.49% तक पहुंच चुका है। इसकी तुलना कृषि मजदूर परिवारों से करें जिनकी संख्या का प्रतिशत देश के कुल परिवारों की संख्या का 23.91 है और यह भी ध्यान रखें कि देश भर के सभी परिवारों की कुल आमदनी में कृषि-मजदूरी से आने वाली आय का प्रतिशत 11.65 है (इसके बावजूद कि कृषि मजदूरी के क्षेत्र में मजदूरी का स्तर अन्य सभी क्षेत्रों से सबसे नीचे है)। देश के कुल परिवारों में से 22.55% किसान परिवारों का कुल आय में हिस्सा 20.65% है जबकि 24.31% कृषि श्रमिकों परिवारों का कुल आय में हिस्सा मात्र 12.32% है (फिर भी हमारे क्रान्तिकारी साथियों की नजर में भारतीय क्रान्ति की धुरी कृषि क्रान्ति है और किसान ही मुख्य लड़ाकू ताकत हैं ।है न अजीबोगरीब बात! आशा है हमारे ये साथी इसका जवाब देंगे)। वैसे भी देश के कुल परिवारों में 25.16% मुख्यतः वेतन से आय पर, 23.91% मुख्यतः कृषि-मजदूरी की आय व 10.35% मुख्यतः गैर-कृषि की मजदूरी से आय पर निर्भर करते हैं। इनका कुल परिवारों में प्रतिशत 59.41 है यानी देश के 59.41% परिवार मुख्यतः वेतन (salary) या मजदूरी (wage) से आय पर निर्भर कर रहे हैं परन्तु फिर भी देश में पूंजीवाद नहीं है (साथियों! आखिर आपकी कल्पना का पूंजीवाद क्या है? वह दुनिया के इतिहास में किसी देश में कभी आया भी है? यदि हां तो हमें भी समझायें)। कृषि में स्वरोजगार में लगे परिवारों (यानि कृषक परिवार) और गैर कृषि में स्वरोजगार में लगे परिवारों जिनका देश के कुल परिवारों में प्रतिशत हिस्सा क्रमशः 22.55 व 12.30 हैं, में भी एक अल्प संख्या ही पूंजीपति वर्ग का चरित्र रखने वाली है (जो कि उजरती श्रम का शोषण करते हैं और जिनकी आय में बेशी मूल्य (surplus value) का हिस्सा महत्वपूर्ण है और जो बेशी मूल्य का पुनः व्यवसाय में निवेश कर बेशी मूल्य कमाते है ओर अपने व्यवसाय का विस्तार करते हैं) और जबकि इनकी बहुसंख्या ऐसे छोटे-उत्पादकों (petty producers) की है जो बाजार की शक्तियों (forces of market) द्वारा शोषित हैं और अपने द्वारा कमरतोड़ श्रम करने के बावजूद बमुश्किल अपना जीवन निर्वाह कर पा रहे हैं। स्वरोजगार में लगे परिवारों का

सारणी 6.1 : परिवारों (households), आबादी व आय में हिस्से (share in income) का व्यवसायगत श्रेणी (occupation group) के अनुसार वितरण (% में)

व्यवसायगत श्रेणी	ग्रामीण			शहर			अखिल भारत		
	परिवार	आबादी	आय में हिस्सा	परिवार	आबादी	आय में हिस्सा	परिवार	आबादी	आय में हिस्सा
स्वरोजगार,कृषि	30.59	32.98	36.11	01.22	01.68	01.20	22.55	25.02	20.65
स्वरोजगार,गैर कृषि	08.62	08.49	12.40	22.06	23.70	23.25	12.30	12.36	17.19
वेतन	13.79	14.34	19.40	55.41	54.93	62.26	25.18	24.66	38.36
कृषि मजदूर	32.64	31.18	21.47	02.21	02.59	00.79	24.31	23.91	12.32
गैर कृषि मजदूर	10.55	09.94	06.93	11.27	11.57	05.19	10.75	10.35	06.16
अन्य	03.81	03.08	03.70	07.83	05.53	07.30	04.91	03.70	05.29
कुल योग	100.00	100.00	100.00	100.00	100.00	100.00	100.00	100.00	100.00

नोटः (1) परिवार (household) को उस व्यवसायगत श्रेणी (occupation group) में श्रेणीबद्ध किया गया है जहां से उनकी आय का 50% से ज्यादा आता है।

(2) 'अन्य स्रोत' में गृह-सम्पत्ति, ब्याज, लाभांश (dividend), पेंशन वगैरह से आमदनी आती है।

स्रोत : MIMAP Survey. Economic and Political Weekly. July 15. 2000 में उद्धृत

यह बहुसंख्यक हिस्सा किसी एक पूंजीपति या किसी एक पूंजीवादी उद्यम से प्रत्यक्षतः तो शोषित नहीं हैं लेकिन बाजार की शक्तियों के माध्यम से यह तबका पूंजीवाद से शोषित अवश्य है और इसके शोषण का अन्त पूंजीवादी व्यवस्था के अन्त से ही, पूंजीवाद विरोधी क्रान्ति से ही हो सकता है। इस मामले यह कहा जा सकता है कि स्वरोजगार में लगे परिवारों की बहुसंख्या, जो कि पूंजीवादी व्यवस्था से शोषित है, को भी पूंजीवाद विरोधी क्रान्ति में लाया जा सकता है, ये पूंजीवाद विरोधी समाजवादी क्रांति के एक महत्वपूर्ण (हालांकि ढुलमुल) समर्थक बन सकते हैं। इस बारे में हम आगे और बातें करेंगे, लेकिन पहले उपरोक्त बातों के संदर्भ में भारत के ग्रामीण इलाकों को लें। भारत के ग्रामीण इलाकों में भी कृषि में स्वरोजगार की श्रेणी (यानी किसान परिवार जिनकी आय के 50% से ज्यादा कृषि से आता है) वाले परिवार अब अल्प संख्या (minority) में है, उनकी संख्या का कुल ग्रामीण परिवारों की संख्या में प्रतिशत हिस्सा 30.59 तक गिर गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले कुल

सारणी 6.2 : व्यवसायगत श्रेणी (occupation group) के आधार पर आय का स्रोत (%)

ग्रामीण/ शहर	व्यवसायगत श्रेणी	आय का स्रोत						
		कृषि	गैर-कृषि	वेतन	कृषि मजदूरी	गैर-कृषि मजदूरी	अन्य	सभी
ग्रामीण	स्वरोजगार, कृषि	81.76	02.05	03.60	05.36	01.96	05.28	100.00
	स्वरोजगार, गैर-कृषि	11.08	78.75	02.98	01.76	00.35	05.05	100.00
	वेतन	08.08	01.88	79.79	02.55	00.99	06.71	100.00
	कृषि मजदूर	08.57	00.87	00.20	79.95	04.67	05.74	100.00
	गैर-कृषि मजदूर	06.71	00.30	00.22	03.61	80.42	08.74	100.00
	अन्य	16.45	02.32	05.81	06.05	00.96	68.41	100.00
	सभी श्रेणियां	35.37	11.16	17.42	20.29	07.56	08.20	100.00
शहर	स्वरोजगार, कृषि	74.01	01.43	04.63	02.28	02.65	14.50	100.00
	स्वरोजगार, गैर-कृषि	00.85	82.81	02.54	00.10	00.57	13.14	100.00
	वेतन	00.85	01.57	84.04	00.06	00.40	13.09	100.00
	कृषि मजदूर	-	-	-	72.80	19.25	07.95	100.00
	गैर-कृषि मजदूर	00.81	01.12	03.52	01.38	81.66	11.51	100.00
	अन्य	00.88	05.95	12.51	00.15	01.87	78.64	100.00
	सभी श्रेणियां	01.72	20.74	54.07	00.74	04.94	17.78	100.00
अखिल भारत	स्वरोजगार, कृषि	81.56	02.04	03.62	05.28	01.98	05.51	100.00
	स्वरोजगार, गैर-कृषि	04.96	81.18	02.72	00.78	00.48	09.88	100.00
	वेतन	02.89	01.66	82.84	00.76	00.56	11.29	100.00
	कृषि मजदूर	08.32	00.85	00.20	79.75	05.09	05.80	100.00
	गैर-कृषि मजदूर	04.51	00.61	01.45	02.78	80.88	09.77	100.00
	अन्य	06.95	04.54	09.90	02.45	01.52	74.66	100.00
	सभी श्रेणियां	20.49	15.40	33.63	11.65	06.40	12.44	100.00

नोटः (1) 'अन्य स्रोत' में गृह-सम्पत्ति, ब्याज, लाभांश (dividend), पेंशन वगैरह से आमदनी आती है।

(2) परिवारों (household) को उस व्यवसायगत श्रेणी (occupation grop) में रखा गया है जहां से उनकी आय का 50% से ज्यादा आता है।

स्रोत : Economic and Political Weekly, July 15, 2000

परिवारों (households) में मुख्यतः गैर-कृषि क्षेत्र के स्वरोजगार पर निर्भर परिवारों का प्रतिशत 8.62, मुख्यतः वेतन (salary) पर निर्भर परिवारों का प्रतिशत 32.14, मुख्यतः गैर-कृषि मजदूरी पर निर्भर परिवारों का प्रतिशत 10.55 व अन्य का प्रतिशत 3.81 है। भारत के ग्रामीण क्षेत्र का चित्र इससे स्पष्ट होता है। भारत के गांवों में मुख्यतः कृषि मजदूरी पर निर्भर परिवारों की संख्या मुख्यतः कृषि में स्वरोजगार पर निर्भर (यानी किसान) परिवारों की संख्या से कहीं ज्यादा हो चुकी है। भारत के गांवों में गैर-कृषि क्षेत्र का भी विगत दशकों में काफी विस्तार हुआ है जिसके कारण कुल ग्रामीण परिवारों में से 32.96 प्रतिशत परिवार (मुख्यतः गैर-कृषि क्षेत्र में स्वरोजगार की आय पर निर्भर परिवार 8.62%, मुख्य वेतन की आय पर निर्भर परिवार 13.79%, व मुख्यतः गैर-कृषि क्षेत्र में मजदूरी पर निर्भर परिवार 10.55% है) मुख्यतः गैर-कृषि क्षेत्र की आय पर निर्भर है। यह ग्रामीण क्षेत्रों में भी कृषि के क्षेत्र के तुलनात्मक रूप से घटते हिस्से का ही परिचायक है। विभेदीकरण की प्रक्रिया (process of differentiation) का भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आलम यह है कि कुल परिवारों में मुख्यतः मजदूरी पर निर्भर परिवारों का प्रतिशत हिस्सा 43.19% (कृषि श्रमिक परिवार 32.64% गैर-कृषि श्रमिक परिवार 10.55%) हो चुका है। इसका अर्थ यही है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी पूंजीवादी व्यवस्था के बढ़ते प्रभाव के चलते 43.19 फीसदी ग्रामीण परिवार तो सीधे-सीधे सर्वहारा वर्ग की कतारों में ढकेल दिये गए हैं। शेष बचे परिवारों में एक बड़ा हिस्सा सर्वहाराकरण की कगार पर खड़ा कर दिया गया है।

सारणी 6.3 : विभिन्न व्यवसायगत श्रेणियों (occupation group) के अनुसार वार्षिक परिवारिक आय (household income) का संकेंद्रण

	संकेंद्रण की माप		स्वरोजगार कृषि	स्वरोजगार गैर-कृषि	वेतन	कृषि मजदूर	गैर कृषि मजदूर	अन्य	सभी श्रेणियां
ग्रामीण भारत	औसत आय		32357	39405	38579	18026	17998	26639	27411
	निचले 20% परिवार	आय में % हिस्सा	6.31	6.11	8.63	9.64	9.13	5.50	7.02
		औसतआय	10208	12038	16647	8689	8216	7326	9621
	ऊपरी 20% परिवार	आय में % हिस्सा	47.22	42.32	36.62	35.35	36.41	41.61	45.27
		औसतआय	76395	83381	70638	31861	32765	55422	62045
शहरी भारत	औसत आय		56773	60779	44805	20616	26578	53319	57675
	निचले 20% परिवार	आय में % हिस्सा	-	5.54	7.39	-	9.86	5.02	6.04
		औसतआय	-	16836	23945	-	13103	13509	17418
	ऊपरी 20% परिवार	आय में % हिस्सा	-	50.58	40.84	-	38.54	50.66	45.48
		औसतआय	-	153718	132332	-	51216	136323	131153
अखिल भारत	औसत आय		32719	42897	54375	18091	20459	38506	35954
	निचले 20% परिवार	आय में % हिस्सा	6.32	5.57	7.42	9.73	8.63	4.88	5.93
		औसतआय	10339	13896	20173	8801	8828	9395	10660
	ऊपरी 20% परिवार	आय में % हिस्सा	47.6	52.40	42.13	35.35	38.6	49.86	49.18
		औसतआय	77871	130730	114541	31976	39487	95995	88419

नोट : शहरों में कृषक व कृषि मजूदर परिवारों के विषय में प्रेक्षण कम होने की वजह से आंकलन नहीं दिया गया है।

(स्रोत : MIMAP Survey, EPW, July 15, 2000, पृष्ठ 2551-32 पर आधारित)

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद विभिन्न व्यवसायगत श्रेणियां स्वयं काफी विभेदीकृत हैं। कृषि में स्वरोजगार करने वाली व्यवसायगत श्रेणी में एक तरफ ग्रामीण कृषि बुर्जुआ वर्ग व दूसरी तरफ गरीब, कंगाल उजड़ रहे किसान शामिल हैं, गैर-कृषि में स्वरोजगार करने वालों में एक तरफ ग्रामीण औद्योगिक व व्यापारिक बुर्जुआ वर्ग तो दूसरी तरफ ग्रामीण क्षेत्रों में अनौपचारिक क्षेत्र में अत्यन्त छोटे (tiny) आकार के एक या दो लोगों को रोजगार देने वाले उद्यम चलाने को मजबूर गरीब लोग शामिल हैं। इसी तरह वेतन पर निर्भर ग्रामीण परिवारों में भी एक तरफ ऊंची वेतन जाने वाले अफसर शामिल हैं तो दूसरी तरफ बहुत कम वेतन पर काम कर रहे कर्मचारी भी। इन तीनों श्रेणियों का निचला (गरीब हिस्सा) पूंजीवादी व्यवस्था से शोषित है और पूंजीवाद विरोधी क्रान्ति का सहयोगी बनने की पूरी संभावनाएं लिए हुए है। यूं तो कृषि मजदूरों व गैर-कृषि मजदूरों के वर्ग में भी आय का भेद मौजूद है, लेकिन एक तो अन्य श्रेणियों के मुकाबले यह भेद काफी कम हैं और दूसरे इन श्रेणियों में ऊपरी तबका भी कम आय वाला है। (इससे भी महत्वपूर्ण बात यह तो अपनी जगह मौजूद है ही कि इनके पास अपने उत्पादन के साधन नहीं हैं और मजदूरी व्यवस्था (wage system) के तहत ये सीधे-सीधे प्रत्यक्षतः इन्हें काम पर रखने वाले से शोषित होते हैं। यही तथ्य समग्र उज़रती मजदूरों (wage labours) को पूंजीवादी व्यवस्था के विरोध में खड़ा करता है और इन्हें ग्रामीण क्षेत्र में सबसे जुझारू क्रान्तिकारी वर्ग में तब्दील करने की संभावना पैदा करता है)। सारणी 6.3 से यह बातें बिलकुल स्पष्ट झलक रही हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि ग्रामीण क्षेत्र में कृषि क्षेत्र में स्वरोजगार करने वाली व्यवसायगत श्रेणियों के निचले 20% हिस्से की औसत वार्षिक आय, कृषि व गैर-कृषि मजदूरों के 20% की औसत आमदनी से भी कम है। जाहिर है कि ये ग्रामीण क्षेत्र के गरीब, कंगाल लेकिन स्वयं अत्यन्त छोटे पैमाने के उत्पादन को संचालित कर रहे लोग हैं। अभी इनके पास अपने नाममात्र के उत्पादन के साधन हैं लेकिन बाजार व्यवस्था व पूंजीवाद आने वाले भविष्य में इन्हें समझा देगा कि इतने छोटे पैमाने के उत्पादन से चिपके रहने से मजदूर बन जाना कहीं ज्यादा बेहतर है।

VII

कृषि में विस्तारित पैमाने के उत्पादन का प्रश्न

कृषि में पूंजीवाद के विकास के संदर्भ में लेनिन केवल दो ही अभिव्यक्तियों को आवश्यक समझते थे। ये हैं:

(1) माल-उत्पादन,

(2) उजरती श्रम यानी मानव श्रम-शक्ति का माल बन जाना।

लेकिन कालान्तर में मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों, विशेषकर भारतीय क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के सिद्धान्तकारों ने, एक नई अभिव्यक्ति को - कृषि में पूंजी के संचय के प्रश्न को यानी विस्तारित पैमाने के पूंजी के पुनर्उत्पादन को - भी कृषि में पूंजीवाद के विकास की आवश्यक अभिव्यक्ति के बतौर लेना शुरू कर दिया। ऐसे लोगों का तर्क यह रहा है कि उपनिवेशवाद के शिकंजे में फंसे देशों में उपरोक्त दो शर्तों - माल उत्पादन व उजरती श्रम - के मौजूद होने से ही कृषि में पूंजीवादी व्यवस्था के काम करने को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उपनिवेशवादी शासन व्यवस्था औपनिवेशिक देशों की कृषि से अधिकतम संभावित धन केवल राजस्व के माध्यम से लूट लिया करती थी तथा कृषि में पूंजी के संचय

के लिए कुछ भी नहीं छोड़ती थी। हमारे देश के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आंदोलन के कई साथियों के मुताबिक आज भी नव उपनिवेशवादी व्यवस्था भारत जैसे देशों में यही कर रही है और भारतीय कृषि में पूंजी का संचय नहीं हो पा रहा है यानी भारतीय कृषि में पूंजी का विस्तारित पैमाने का पुनर्उत्पादन नहीं हो पा रहा है और इसलिए भारतीय कृषि को पूंजीवादी नहीं कहा जाना चाहिए।

हम इस तर्क से सहमत नहीं है। हम यह समझते हैं कि सामंतवाद (अथवा अर्द्धसामंतवाद) और पूंजीवाद के बीच कौन हावी है, यह प्रश्न मूलतः उत्पादन संबंधों के चरित्र को तय करने का प्रश्न है और यदि बाजार व्यवस्था इतनी विकसित हो चुकी हो कि मानव श्रम शक्ति भी माल बन चुकी हो तो समाज पूंजीवादी समाज ही होगा। यदि उपनिवेशवादी (या नवउपनिवेशवाद) कृषि में पूंजी का संचय नहीं होने दे रहे हैं और कृषि में पैदा होने वाले समग्र अतिरिक्त मूल्य को शासन-व्यवस्था द्वारा भू-राजस्व (land revenue) के माध्यम से लूट ले रहे हैं तो यह (ग्रामीण) कृषि बुर्जुआ व उपनिवेशवादियों के बीच एक अन्तर्विरोध तो अवश्य पैदा करेगा, लेकिन इससे उत्पादन संबंध अर्द्ध-सामंती नहीं हो जाएंगे। वे तो पूंजीवादी उत्पादन संबंध ही होंगे और उन्हें वही कहना चाहिए, जो वे वास्तव में है। हां! इस प्रकार का पूंजीवाद एक विशिष्ट पूंजीवाद होगा, जिसकी विशिष्टता (कृषि क्षेत्र के पूंजीपति वर्ग और उपनिवेशवाद के बीच मौजूद अन्तर्विरोध) को हर क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट को संज्ञान में लेकर उसके हिसाब से कार्य करना होगा। लेकिन 1947 की राजनीतिक आजादी (जिसके ऐतिहासिक महत्व को हमारे कई कामरेड केवल "सत्ता का हस्तांतरण" कह कर सीमित करने का प्रयास करते हैं) हासिल करने के बाद बुर्जुआ वर्ग के शासन ने जो भूमि-सुधार (जो सुधार ही थे, क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं) किये, उनके परिणामस्वरूप अब भू-राजस्व के माध्यम से तो शासन की लूट खत्म हो चुकी है। आज जो भू-राजस्व (land revenue) सरकार वसूलती है, वह तो शायद इस विभाग के कर्मचारियों के वेतन के लिए भी पूरा नहीं पड़ता होगा। अब जैसा कि किसी भी पूंजीवादी व्यवस्था में

सारणी 7.1 : पंजाब में पांच मुख्य आकार वर्ग के अनुसार 1970-71 से 1980-81 के बीच भू-जोतों की संख्या में % परिवर्तन

जिला	सीमांत	लघु	मध्यम	विशाल	अति विशाल	कुल
अमृतसर	-73.0	-40.7	10.0	7.75	36.5	-38.6
भटिंडा	-55.0	-31.0	-0.5	15.20	-3.5	-14.8
फिरोजपुर	-68.4	-28.9	1.7	-10.60	8.9	-29.7
गुरदासपुर	-46.4	-1.8	15.0	3.4	2.3	-18.5
होशियारपुर	-68.4	-21.9	24.1	17.80	-10.0	-36.7
जालंधर	-67.7	-45.8	-2.1	7.50	-24.2	-35.6
फरीदकोट	-54.9	+3.6	-35.0	21.80	33.4	-15.96
कपूरथला	-81.6	-33.3	13.3	38.90	65.4	-33.3
लुधियाना	58.5	-28.5	-2.4	12.20	2.1	-19.5
पटियाला	-32.2	-14.1	14.5	9.20	0.05	-5.0
रोपर	-51.2	+4.8	7.2	-4.40	-25.2	-24.1
संगरूर	-51.9	-25.0	0.5	1.10	12.6	-16.7
कुल	**-61.9**	**-23.3**	**2.3**	**8.6**	**7.3**	**-25.3**

(स्रोत: Agricultural Census of Punjab. 1970-71, 1980-81 Trends in Agrarian Economy. Pub. PPH में उद्धृत)

होता है कृषि क्षेत्र में पैदा होने वाले अतिरिक्त मूल्य का एक हिस्सा बाजार व्यवस्था के माध्यम से अन्य क्षेत्रों के पूंजीपतियों को स्थान्तारित हो जाता है। अब यदि साम्राज्यवादी आज भी कृषि में पैदा हुए अतिरिक्त मूल्य में एक महत्वपूर्ण हिस्सा हस्तगत करके रहे है, तो वह बाजार व्यवस्था के जरिये हैं, शासन व्यवस्था के बल पर राजस्व के जरिये नहीं। यह बात भी ठीक है कि साम्राज्यवाद एकाधिकारी पूंजीवाद है और एकाधिकारी पूंजी के लिए यह संभव होता है कि वह अपने लिये सामान्य से ज्यादा बड़ा हिस्सा हथिया ले। दूसरे शब्दों में, वह सामान्य मुनाफे (normal porfit या average rate profit) से ऊपर अति मुनाफा (super profit) कमा ले। लेकिन ऐसा नहीं होता कि एकाधिकारी पूंजी कृषि क्षेत्र में मौजूद गैर-एकाधिकारी पूंजी (non- monopoly capital) के लिए संचय हेतु कुछ भी न छोड़े। ऐसा होने पर कृषि क्षेत्र में बने रहने के लिए कोई प्रोत्साहन (incentive) नहीं होगा और वह कृषि क्षेत्र से अन्य क्षेत्रों को पलायन करने लगेगा। और यह प्रक्रिया पूरी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के लिए संकट खड़ा करने लगेगी और अर्थव्यवस्था एक ऐसा संतुलन (equilibrium) स्थापित करने की ओर आगे बढ़ेगी, जहां कृषि क्षेत्र के पूंजीपतियों को भी कृषि क्षेत्र बने रहने योग्य मुनाफा हासिल होता रहे। और भारतीय कृषि व्यवस्था में भी यही हो रहा है। यहां कृषि क्षेत्र के पूंजीपति न केवल मुनाफा कमा रहे हैं बल्कि पूंजी का संचय भी कर रहे हैं। आइये! इस पर नजर डालें।

पहले पूंजी के संचय को सैद्धान्तिक स्तर पर समझ लिया जाय। पूंजी के संचय से हमारा तात्पर्य यह है कि पूंजीपति सम्पूर्ण मुनाफे का उपभोग न करके मुनाफे के एक हिस्से का पुनः पूंजी के रूप में निवेश करे। दूसरे अर्थों में, पूंजी का विस्तारित पैमाने पर पुनर्उत्पादन होता रहे। इसके बारे में कार्ल मार्क्स के निम्नलिखित उद्धरण मामले को समझने में हमारी मदद करते हैं।

"बेशी मूल्य को पूंजी के रूप में इस्तेमाल करना, उसे पुनः पूंजी में बदल

सारणी 7.2 : पंजाब में भू-जोतें

आकार (acreas)	संख्या			प्रतिशत		
	1970-71	1980-81	(+)/(-)	in 71	in 81	(+)/(-)
upto 1.25	310049	8156	-	22.54	7.94	-
1.25-2.5	207519	110734	-	15.09	11.29	-
2.5-5.0	269083	199368	-	18.91	19.41	+
5.0-7.5	169826	176421	+	12.35	17.18	+
7.5-10	111277	110946	-	8.09	10.81	+
10-12.5	79021	104932	+	5.75	10.22	+
12.5-25	163734	164140	+	12.27	15.98	+
25-50	58498	61680	+	4.25	6.0	+
50-75	7631	9098	+	0.55	0.88	+
75-100	1801	1826	+	0.13	0.18	+
100-125	652	749	+	0.05	0.07	+
Above 125	301	588	+	0.02	0.06	+
All	1379392	948638		100	100	

(स्रोत : Agricultured Census of Punjab 1970-71, 1980-81. Trends in Agrarian economy, pub. PPH. से लिया गया)

देना, पूंजी का संचय कहलाता है।" (कार्ल मार्क्स, पूंजी, खण्ड I, तीसरा संशोधित संस्करण, प्रगति प्रकाशन मास्को, पृष्ठ 612)

"जिस तरह साधारण पुनरूत्पादन स्वयं पूंजी के संबंध का - अर्थात् एक ओर, पूंजीपतियों और दूसरी ओर, मजदूरी पर काम करने वालों के संबंध का - भी लगातार पुनरूत्पादन करता रहता है, उसी तरह उत्तरोत्तर बढ़ते हुए पैमाने का पुनरूत्पादन, अथवा संचय, पूंजी के संबंध का उत्तरोत्तर बढ़ते हुए पैमाने पर पुनरूत्पादन करता है, और एक छोर पर अधिकाधिक बड़ी संख्या में या अधिकाधिक बड़े आकार के पूंजीपति पैदा होते जाते हैं और दूसरे छोर पर मजदूरों की संख्या बढ़ती जाती है। ...अतएव पूंजी का संचय सर्वहारा की वृद्धि है।" (कार्ल मार्क्स, वही, पृष्ठ 646)

इससे स्पष्ट है कि पूंजी के संचय से तात्पर्य बेशी मूल्य (दूसरे रूप में मुनाफा) के एक हिस्से को पूंजी के रूप निवेशित करना है ताकि पूंजी संबंध (capital relation) को बढ़ते पैमाने पर दोहराया जाए यानी विस्तारित पैमाने पर पूंजी का पुनरूत्पादन हो। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ पहले अधिक संख्या में पूंजीपति या पहले से बड़े पूंजीपति दिखाई देते हैं और दूसरी तरफ पहले से अधिक संख्या में उजरती श्रमिकों की आबादी नजर आती है। इसीलिए तो मार्क्स पूंजी में कहते भी हैं कि "पूंजी का संचय इसीलिये सर्वहारा की वृद्धि है।" और यह प्रक्रिया भारत के कृषि क्षेत्र में दिखाई देती है। अन्यथा कृषि श्रमिकों की लगातार सापेक्षतः व निरपेक्षतः दोनों ही मामले में, बढ़ती तादात को और कैसे समझा जा सकता है।

आइये! मामले की और गहराई में चलें। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "पूंजी" के प्रथम खण्ड के "पूंजीवादी संचय के सामान्य नियम" नामक अध्याय (अध्याय 25) में मार्क्स पूंजीवादी संचय की प्रक्रिया को तीन हिस्सों में बांटकर प्रस्तुत करते हैं। ये हैं:

सारणी 7.3 : कृषि में सकल अचल पूंजी निर्माण

Year	स्थिर दामों पर (1980-81)			चालू दामों पर		
	करोड़ रूपये	कृषि में सकल घरेलू उत्पाद के% में	कुल सकल अचल पूंजी निर्माण के % में	करोड़ रूपये	कृषि में सकल घरेलू उत्पाद के % में	कुल सकल अचल पूंजी निर्माण के % में
1950-51	1224	5.9	25.0	222	4.7	24.8
1960-61	1585	5.5	16.2	406	6.2	18.0
1970-71	2625	7.3	19.1	1102	6.6	19.7
1980-81	4537	10.7	19.2	4537	10.7	19.2
1990-91	4459	7.3	10.1	11279	8.3	10.6

❑ सकल अचल पूंजी निर्माण (Gross Fixed Capital Formation) में नये निर्माण तथा मशीनरी व यंत्र को खरीद करना शामिल है (यातायात के यंत्र और ब्रीडिंग, भारवाही व दुग्ध उत्पादन के पशुओं को सम्मिलित करते हुए)।

❑ भूमि व खनिज भण्डारों जैसी सम्पतियां, जिनका पुनरूत्पादन नहीं हो सकता है और खड़े पेड़ों और फसलों की नैसर्गिक वृद्धि सकल अचल पूंजी निर्माण में शामिल नहीं है (भूमि की खरीद-फरोख्त को स्थानीय निवासियों के बीच हुआ माना जाता है)।

सारणी 7.4 : अखिल भारतीय स्तर पर घरेलू क्षेत्र में अचल पूंजी निर्माण (fixed capital formation) का वितरण (% में)

वर्ष	मशीनरी यंत्र और यातायात	कुंआ व अन्य सिंचाई के स्रोत	भूमि का सुधार	फार्म हाऊस व जानवर के शेड	फलोद्यान व बागान	अन्य पूंजीगत व्यय	कुल
1971-72	43.3	26.80	16.5	10.5	1.8	1.20	100.00
1981-82	51.96	20.45	15.25	4.55	2.8	5.00	100.00
1991-92	74.8	24.70	12.9	3.67	5.08	6.26	100.00

(स्रोत : EPW, May19.2001, पृष्ठ 1699)

(1) पूंजी की संरचना के ज्यों की त्यों रहते हुए संचय के साथ-साथ श्रम शक्ति की मांग बढ़ जाना;

(2) संचय की प्रगति और उसके साथ चलने वाली संकेंद्रण के साथ-साथ पूंजी के परिवर्ती अंश की मात्रा में सापेक्ष कमी;

(3) सापेक्ष बेशी आबादी या औद्योगिक रिजर्व सेना का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ उत्पादन।

और हम कहना चाहते हैं कि भारतीय कृषि क्षेत्र में उपरोक्त तीनों ही रूपों में पूंजीवादी संचय की प्रक्रिया देखने को मिल जाती है। हां! यह अवश्य है कि पूंजीवादी विकास के अलग-अलग स्तरों पर होने और बहुत विविध मार्गों पर चलने के कारण देश के अलग-अलग भागों में उपरोक्त प्रक्रिया बहुत विविध रूपों मे, विविध स्तरों पर दिखाई देती है। लेकिन पुनः हम सिर्फ यही कह सकते हैं कि यह तो, बकौल हमारे शिक्षक लेनिन कृषि में पूंजीवाद के विकास का अन्तर्निहित चरित्र है। भारतीय कृषि में कार्यरत कृषि मजदूरों की लगातार बढ़ती आबादी (न केवल निरपेक्षतः बल्कि सापेक्षतः भी), कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीक के नये उपकरणों का लगातार बढ़ता प्रयोग (जो स्थिर पूंजी में वृद्धि का परिचायक है) और इन सबसे आगे बढ़कर, ग्रामीण इलाकों में बढ़ती जा रही खुली व छिपी (concealed) बेरोजगारी, तीनों ही कृषि में पूंजी संचय की प्रक्रिया के प्रतीक हैं।

दरअसल हमारे जिन साथियों को कृषि में पूंजी संचय होता नहीं दिखाई देता है, वे पूंजी संचय को उसके एक विशेष रूप - भूमि के संकेद्रण की प्रक्रिया - में होते हुए देखना चाहते हैं। हमारा यह कहना है कि भूमि के संकेद्रण (land concentration) की प्रक्रिया के न दिखाई देते हुए भी स्थिर पूंजी के भूमि के अलावा अन्य तत्वों - जैसे मशीनें, खादें, नई कृषि तकनीक के प्रयोग, उन्नत बीज, बिजली व डीज़ल के रूप में ऊर्जा वगैरह - के बढ़ते प्रयोग के जरिये भी और साथ-साथ कृषि मजदूर के बढ़ते इस्तेमाल - जो पहले से अधिक गहन (intensive) खेती के कारण संभव हो सकता है - के मार्ग से भी कृषि में पूंजी संचय की प्रक्रिया चल सकती है।

भारतीय कृषि के क्षेत्र में भूमि के संकेंद्रण के प्रक्रिया बड़े पैमाने पर नहीं चली है और यह प्रक्रिया भारतीय कृषि में पूंजीवादी विकास की चारित्रिक विशेषता नहीं बनी है। लेकिन इसका कारण भारतीय पूंजीवादी विकास मार्ग की विशिष्टता रही है और उसे समझा जाना चाहिए, न कि भूमि के संकेंद्रण के न दिखाई देने के कारण पूंजी के संचय (accumulation of capital) की प्रक्रिया, जो कि एक भिन्न चीज है, को भी नकार दिया जाना चाहिए। यहां हम मामले की और गहराई में न जाते हुए केवल इशारा करना चाहेंगे कि भारतीय पूंजीवाद, विश्व पूंजीवाद की बुढ़ापे के पैदायश होने के कारण अपने जन्म से

ही कई बीमारियों से ग्रसित था जिनमें से एक उसका शुरू से ही एकाधिकारी (monpolist) चरित्र का होना था। भारतीय पूंजीवाद में यह क्षमता ही नहीं थी कि कृषि मे तेजी से, बेरोकटोक पूंजीवादी विकास के कारण, जो संकेंद्रण की प्रक्रिया को भी अवश्य जन्म देता, ग्रामीण इलाकों में अपनी भूमि पूर्णतः खोकर सर्वहारा की जमात में शामिल होने वाली भारी कामगार आबादी के लिए रोजगार विकसित कर पाता। दूसरी तरफ, वह बड़े पैमाने पर भूमि से बेदखली के फलस्वरूप पैदा होने वाली बेरोजगार कामगार आबादी के विद्रोह का भी सामना नहीं करना चाहता है। आज तक भूमि हदबन्दी कानून (Land Ceiling Act) को बनाये रखने की पूंजीपति वर्ग के शासन की नीयत इसी की अभिव्यक्ति है। आज की बुर्जुआ शासन व्यवस्था अपना हित इसी में देख रही है कि उजड़ रहे, कंगाल, तबाह, अपनी श्रम-शक्ति को बेचकर अपना जीवन निर्वाह करने वाले, भूमि एक छोटे से टुकड़े की लालच में गांवों में ही बने रहें और बुर्जुआ शासन व्यवस्था निष्कंटक चलती रहे। जाहिर है, भूमि हदबन्दी कानून (Land Ceiling Act) भूमि के संकेंद्रण की प्रक्रिया में एक बाधा का काम तो करता ही है।

सारणी 7.5 : निजी खाते में प्रति कृषक अचल पूंजी निर्माण (रूपये में) 1981-82

राज्य	कृषि में अचल पूंजी निर्माण (रूपये में)	अचल पूंजी निर्माण के % में सिंचाई में निवेश
पंजाब	915	10
हरियाणा	652	24
केरल	135	13
कर्नाटक	253	19
राजस्थान	234	39
महाराष्ट्र	304	46
उत्तर प्रदेश	178	13
आन्ध्र प्रदेश	187	36
गुजरात	322	34
तमिलनाडु	164	39
मध्य प्रदेश	151	36
पश्चिम बंगाल	54	5
बिहार	43	27
उड़ीसा	38	9
असम	51	5
अखिल भारत	176	26

[Source : Dhawan & Yadav, EPW, Sept. 30, 1995]

लेकिन इसके बावजूद भारत के जिन राज्यों में कृषि में पूंजीवादी विकास एक निश्चित स्तर को पार कर गया है तथा अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के विकास के कारण जहां कृषि पर आबादी का अतिरिक्त दबाव नहीं बना हुआ है, जहां कृषि श्रमिकों की विशाल अतिरिक्त आबादी मौजूद होने की जगह कृषि श्रमिकों की सापेक्षतः कमी है; ऐसे राज्यों में भूमि का संकेंद्रण (concentration of land) नजर भी आने लगा है। 1980 के दशक की शुरूआत के बाद से ही पंजाब और हरियाणा में विपरीत किरायेदारी (reverse tenancy) की प्रक्रिया, भूमि के संकेंद्रण की प्रक्रिया नही तो और क्या है? इस बारे में हम पंजाब की कृषि जनगणना (Agricultural Census) के आंकड़े पाठक के समक्ष रखना चाहेंगे। (सारणी 7.1 व 7.2)

कृषि में पूंजी के संचय ओर पूंजी निवेश के सवाल को अब हम एक नये दृष्टिकोण से आंकड़ों के माध्यम से और स्पष्ट करना चाहेंगे। भारतीय कृषि में सकल अचल पूंजी निर्माण (gross fixed capital formation) के बारे में सारणी 7.3 हमें से जानकारी मिलती है। यह सारणी हमें यह बताती है कि 1951 के बाद से ही भारतीय कृषि में कितनी नई अचल पूंजी लगी है (यह उत्पादन में एक वर्ष में खर्च हो गई अचल पूंजी का जिक्र नहीं करती)। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि अचल पूंजी में यहां, भूमि को शामिल नहीं किया गया है जो, मार्क्सवादी-राजनीतिक अर्थशास्त्र के मुताबिक, कृषि में अचल पूंजी का

सबसे महत्वपूर्ण अंग है (अब बुर्जुआ से तो मार्क्सवाद का अनुसरण करने की अपेक्षा तो हम नही कर सकते)। फिर भी एक प्रवृत्ति को समझने के लिये, आइये, इतने से काम चलाते हुए आगे चलें।

इस सारणी के तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय **कृषि में सकल अचल पूंजी निर्माण** (GFCFA) (जिसमें केवल उत्पादक कामों लिये कराये गए निर्माण (construction) व मशीनरी को शामिल किया गया है) पिछले पांच दशकों में कृषि में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के लगभग 5% से 10% के बीच और देश की अर्थव्यवस्था में **कुल सकल अचल पूंजी निर्माण** (GFCF) के 25% से 10% के बीच बदलता रहा है। कुल सकल अचल पूंजी निर्माण में कृषि में सकल अचल पूंजी निर्माण का हिस्सा पिछले पांच दशकों में लगातार घटता गया है जो कि पूंजीवादी विकास की प्रक्रिया में अन्य क्षेत्रों - गैर कृषि क्षेत्र - के बढ़ते महत्व का परिचायक है।

अब और आगे चलें। 1981-82 में *कृषि में सकल अचल पूंजी निर्माण* (GFCFA) में निजी क्षेत्र का हिस्सा 49% था जो 1998-99 तक आते आते 75% तक पहुंच गया। निजी क्षेत्र के भीतर *संगठित कारपोरेट क्षेत्र* (organised corporate sector) का हिस्सा 5% से कम ही रहा है। निजी क्षेत्र में मुख्य हिस्सा (करीब 95%) *घरेलू क्षेत्र* (household sector) का ही रहा है (EPW, May 19,2001, पृष्ठ 1698) इस प्रकार 1990 के दशक के अन्त में *कृषि में सकल अचल पूंजी निर्माण* में घरेलू क्षेत्र की भागेदारी करीब 71% रही है । घरेलू क्षेत्र द्वारा अचल पूंजी निर्माण का विवरण अखिल भारतीय स्तर पर पांच मोटे मदों मे सारणी 7.4 में मिल जाता है।

इस सारणी के आधार पर हमें कृषि में घरेलू क्षेत्र के द्वारा हो रहे अचल पूंजी निर्माण के चरित्र का अंदाज लग जाता है। करीब 50% अचल पूंजी निर्माण यातायात, मशीनरी व यंत्रों के लिए, 25% सिंचाई के साधनों पर व 15% भूमि-सुधार (land improvement) के लिए हुआ (फिर भी हमारे साथी कृषि उत्पादन में पूंजीवादी प्रवृत्ति की मौजूदगी को नहीं स्वीकार करते!) ।

कृषि में यह पूंजी निर्माण कौन कर रहा है ? जाहिर है वही कर सकता है जिसके पास ऐसा करने के लिए संचित पूंजी हो और जिसकी पूंजीवादी उत्पादन में रूचि हो- यानि ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग। घरेलू क्षेत्र द्वारा कृषि में सकल अचल पूंजी निर्माण (GFCFA) का

सारणी 7.6 : कृषि में अचल पूंजी निर्माण, 1981-82

क्रमांक सम्पत्ति वर्ग	सम्पत्ति वर्ग मे कृषकों का %	किसानों का % हिस्से जो FCFA में भाग लेता	FCF में हिस्सेदारी करने वाले किसानों का %	FCFA प्रति कृषक परिवार (रूपये में)
1. रूपये 1000 तक	1.5	5.7	नगण्य	3
2. रू01000-5000	11.3	8.5	1.1	16
3. रू 5000-10000	13.4	9.4	1.6	21
4. रू 10000-20000	20.7	12.6	5.4	45
5. रू 20000-50000	28.9	16.7	16.2	99
6. रू 50000-100000	14.0	22.7	18.4	233
7. रू 100000-500000	9.7	30.3	47.4	863
8. रू 500000 से अधिक	0.4	50.0	9.9	3909
9. सभी संपत्ति वर्ग	100.0	16.1	100.0	176

(स्रोत : EPW, September 30, 1995 (Dhawan & Yadav)

भारतीय राज्यों के हिसाब से बंटवारा बहुत विविध है। इसके बहुत नये तथ्य हमारे पास नहीं है, लेकिन मामले की प्रवृत्ति को समझने के लिए हम 1981-82 के आंकड़ों से काम चलाने से गुरेज नहीं करेंगे।

सारणी 7.7 : अखिल भारतीय स्तर पर कृषि में स्वरोजगार में लगे परिवारों (किसानों परिवारों) के बारे में

वार्षिक औसत आय (रूपये)	23823
वार्षिक औसत व्यय (रूपये)	32719
वार्षिक औसत बचत (रूपये)	8896
परिवारों की कुल संख्या (करोड़ में)	3.61
अखिल भारतीय स्तर पर कुल बचत (करोड़ रूपये में)	32146

(स्रोत : MIMAP Survey. EPW. July 15. 2000 के आधार पर)

अखिल भारतीय स्तर 1981-82 मे कृषि में प्रति कृषक 176 रूपये (जो 1997-98 के दामों के आधार पर करीब 672 रूपये होते हैं) का *सकल अचल पूंजी निर्माण* (GFCFA) हो रहा था। इसका वितरण बहुत विविधता लिए हुए है और प्रति कृषक पंजाब में 915 रूपये (1997-1998 के दामों पर करीब 3495 रूपयों) से लेकर उड़ीसा मे 38 रूपये (1997-98 के दामों पर 145 रूपये) तक हैं। यह विविधता हमें भारत में अलग-अलग राज्यों में कृषि में पूंजीवादी विकास के स्तर का एक चित्र दिखा रही है। कुछ साथियों को यह धनराशि बहुत कम लगेगी। लेकिन आइये, इस औसत धनराशि का जरा वर्गीय विभाजन के अनुसार वितरण देखें। सारणी 7.6 हमारी इसमें मदद करेगी।

संपत्ति के हिसाब से किसान परिवारों का वितरण कर जब हम हर वर्ग में प्रति कृषक (परिवार) सकल अचल पूंजी निर्माण (GFCFA) पर नजर डालते हैं तो एक अलग ही चित्र उभर कर सामने आने लगता है। जहां निचली श्रेणियों में सकल अचल पूंजी निर्माण बहुत कम (लगभग नगण्य) है वही सबसे ज्यादा सम्पत्ति रखने वाली श्रेणी में आधे से ज्यादा कृषक (परिवार) अचल पूंजी निर्माण में हिस्सेदारी करते हैं और इस श्रेणी में 1981-82 में प्रति कृषक (परिवार) 3909 रूपये (1997-98 के दामों पर करीब 14,925 रूपये) का सकल अचल पूंजी निर्माण हो रहा था । ये हैं वे तथ्य जिन्हें भारतीय कृषि में पूंजीवादी विकास को समझने की प्रक्रिया के तहत ध्यान दिया जाना चाहिए।

अभी तक हमने जितनी बातें की हैं वे भारतीय कृषि में पूंजी संचय व पूंजी निवेश (निर्माण) के बारे में एक चित्र खींचती हैं, लेकिन यह चित्र अभी अधूरा है । यह अधूरा चित्र तब पूरा हो जाएगा, जब हम यह भी समझ लें कि कृषि में जो पूंजी संचित हो रही है, उसका एक हिस्सा ही कृषकों का धनवान तबका कृषि में निवेश करता है। दूसरा हिस्सा बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं की मार्फत अर्थव्यवस्था में दूसरे क्षेत्रों में पूंजीनिर्माण के लिए ट्रान्सफर हो जाता है। इसको भी शामिल करके ही कृषि में कृषि-बुर्जुआ द्वारा संचित की जा रही है पूंजी का सही अनुमान लगाया जा सकता है। आइये, इसको समझने का प्रयास करें।

MIMAP Survey में ही किसान परिवारों के संदर्भ में दिये गए आय व उपभोक्ता व्यय के आधार पर गणना करने पर हम पाते हैं कि अखिल भारतीय स्तर पर किसान परिवारों द्वारा की जाने वाली बचत 32,146 करोड़ रूपये है (देखें सारणी 7.7)। इसी का एक हिस्सा कृषि में सकल अचल पूंजी निर्माण में खर्च होता है जबकि दूसरा हिस्सा बैंकों, वित्तीय संस्थाओं वगैरह के माध्यम से कारपोरेट क्षेत्र व सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजी निर्माण के लिऐ स्थानान्तरित हो जाता है। किसान परिवारों द्वारा बचत का एक हिस्सा गैर-कृषि क्षेत्र में पूंजी निर्माण में भी खर्च होता है। इन बातों को भी कृषि में पूंजी संचय के संदर्भ में वाद-विवाद में अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए तभी भारतीय कृषि में पूंजीवाद के विकास की प्रक्रिया को उसकी विशिष्टता में समझा जा सकता है। ❑ ❑ ❑